समरथ

जनवरी-फरवरी 2013 ◆ नई दिल्ली

नाहि तो जनम नसाई

समरथ का यह अंक ऐसे हालात में प्रकाशित होने जा रहा है जब हर रोज़ अख़बारों की सुर्खियों में बलात्कार की खबरें एक-दो नहीं दर्जनों की तादाद में छायी रहती हैं। हालात कुछ ऐसे बन गये हैं कि अब इस दुष्कर्म को मात्र बलात्कार कहना काफ़ी नहीं है। पिछले कुछ दिनों से बलात्कार की जितनी खबरें आ रही हैं उसमें अधिकतर घटनायें छोटी बच्चियों के साथ हो रही हैं। चार साल-पांच साल की बच्चियां। अभी कल कोलकाता में एक डेढ़ साल की बच्ची के साथ भी ऐसा ही दुष्कर्म हुआ। ऐसी बच्चियां जिनको ये तक नहीं पता कि उनके शरीर को नोचा क्यों जा रहा है। क्या है उनमें ऐसा जो उनके जिस्म की धज्जियां उड़ाये। उन्हें तो ये भी नहीं पता कि उनके शरीर के अंग किसलिए बने हैं। दर्द मात्र दर्द का एहसास। इसके इलावा उन्हें कुछ नहीं पता होता। ये ज़ख्म उनके लिए उसी तरह से हैं जिस तरह से शरीर के किसी और हिस्से पर गहरे जख्म लगाए जाएं। उन्हें फर्क नहीं पता कि शरीर के जिस हिस्से को नोचा जा रहा है उसका दर्द और गर्दन काटे जाने का दर्द दोनों अलग कैसे हैं। हां इनमें से जीवित बचने वाली बच्चियां कुछ वर्षो बाद जान पाएंगी कि उनके साथ क्या हुआ था। उसके बाद शुरू होगा एक दूसरे दर्द का दौर। जो मरते दम तक उन्हें तड़पाता रहेगा। ये ज़िंदगी होगी या सिर्फ सांस, हाथ-पांव चलने की दशा? हमारे घरों में पैदा होते साथ बच्चों को धर्म और संप्रदाय के सबक पढ़ाए जाने लगते हैं। मगर हम अपने बच्चों को खुद अपनी इज़्जत करना नहीं सिखाते। महिलाओं की इज़्जत करना क्या सिखाएंगे। बल्कि शिक्षा तो हमारी उल्टी होती है। बहुत कुछ हम ज़िम्मेदार हैं ऐसे दिमाग ढालने में जिसे पाशविकता कहना पशुओं के साथ अन्याय है। ऐसी ही व्यवस्था के विरोध में प्रस्तुत है गेब्रेला गनाओं की कविता 'मेरा गरजना तो सुनो'।

मेरा गरजना तो सुनो

■ **गेब्रेला गनाओ**

एक औरत हूँ मैं तुम मेरा गरजना तो सुनो
अपने माजी का तकाजा, न बहाना कोई
अपने संघर्ष का अम्बार खुद आँखों के तले
और गर्दन में सफलता की पताका डाले

एक औरत हूँ मैं तुम मेरा गरजना तो सुनो

मैं भी हिलने की नहीं मैं भी अब रोजा पार्क्स
मैं यहीं हूँ, मुझे क्या तुम रहो या हट जाओ
किसी धमकी किसी आवाज की परवाह नहीं
मेरी ताकत का बताऊँ तो तुम्हे पास नहीं
मेरी कूवत में है इंसानियत का साज-ए-निहा

एक औरत हूँ मैं तुम मेरा गरजना तो सुनो

यह पसीना यह दमकते हुए खूँ के धब्बे
यह निशानी है मेरे गर्भ में जो बीज पड़े
एक दाने सा जो फूला हुआ गुब्बारा बने
तुम को रखने को मेरा पेट जो हरदम फैले
हर महीने जो मेरे पेट में कोहराम चले
और वह दर्द जो जनने के समय मुझको मिले
जिस्म का दर्द कि जिस से मुझे आराम मिले
जिस से कि तुमको हमेशा ही मेरा प्यार मिले

एक औरत हूँ मैं तुम मेरा गरजना तो सुनो

बोझ एक सर पे लिए जैसे नशा हो कोई
बेदयारी, और जिस्मों पे "ग्रैफिटी" पायी
पर कोई धब्बा कोई गर्द शिकस्त दे न सका
मेरी मुस्कान कोई मुझसे कभी ले न सका
मैंने जाना कि मैं लड़की थी कभी अब लेकिन
एक औरत में ढली गर्व है मुझको लेकिन

एक औरत हूँ मैं तुम मेरा गरजना तो सुनो

मुझसे मत कहना कि तुम कैद रहो पिंजरे में
मुझसे मत कहना कि कैसी लगो तुम दिखने में
जिस्म की सिलवटें हैं मेरी सजावट के निशां
जैसे एक हुस्न था कि नाम मदर टेरेसा था
दर्दमंदी है किसी मक्र से लेना क्या है
यह जमीन मेरी है हक अपना मुझे लेना है

एक औरत हूँ मैं तुम मेरा गरजना तो सुनो

(अनुवाद : खुर्शीद अनवर)

आतंक के प्रयोग

■ सुभाष गाताडे

पिछले कुछ समय से हिंदुत्ववादी आतंक का मुद्दा चर्चा में है। दिसंबर के उत्तरार्ध और जनवरी के पूर्वार्ध में जहां इस मामले में कुछ नए खुलासे हुए, आतंककारी घटनाओं को अंजाम देने वाले चंद फरार कारिंदों की गिरफ्तारियां हुईं, कुछ ऐसे मामले भी सामने आए जिनमें सबूतों के अभाव में फाइलें बंद कर दी गई थीं। आतंकवादी घटनाओं की जांच के लिए बनी राष्ट्रीय जांच एजेंसी ने बताया कि इन गिरफ्तारियों से समझौता एक्सप्रेस बम विस्फोट (2007), मक्का मस्जिद बम विस्फोट (2007) और मालेगांव बम धमाकों (2006 और 2008) जैसे मामलों में कुछ नए सबूत मिलेंगे।

यह भी सुनने में आया कि लंबे इंतज़ार के बाद अंततः महाराष्ट्र सरकार ने केंद्र सरकार से सिफारिश की है कि वह 'सनातन संस्था' पर पाबंदी लगाए। याद रहे खुद को 'आध्यात्मिक' कहने वाली इस संस्था के सदस्य हिंदू राष्ट्र बनाने के अपने इरादों की खातिर बम विस्फोट की कई घटनाओं में लिप्त पाए गए हैं और दंडित भी हुए हैं। अलबत्ता समाचारों में सरगना लोगों के बारे में कभी कुछ नहीं आया। किन लोगों ने आतंक की योजनाएं बनाईं, पैसे और विस्फोटकों का प्रबंध किया, इस सबको लेकर उन खबरों में खामोशी थी।

मीडिया के इस हिस्से में यह चर्चा चल ही रही थी कि गृहमंत्री सुशील कुमार शिंदे के एक वक्तव्य को लेकर तमाम हिंदुत्ववादी संगठन आग बबूला हो उठे। उन्होंने शिंदे के बयान को हिंदू समाज का अपमान बताया, जगह-जगह उनके पुतले जलाए और अब उन्होंने तय किया है कि इस विरोध को संसद से सड़क तक जारी रखेंगे।

शिंदे की इस घेराबंदी ने पूर्व गृहमंत्री पी. चिदंबरम के प्रति हिंदुत्व-जमात के रवैए की याद ताजा कर दी। वर्ष 2008 के अंत में गृह मंत्रालय का जिम्मा संभालने के लगभग डेढ़ साल तक संघ और भाजपा के लिए वे आंख का तारा रहे थे। उन्होंने चिदंबरम के काम की खुलकर तारीफ करने में संकोच नहीं किया था। अक्तूबर 2009 में राजगीर (बिहार) में आयोजित संघ की बैठक की रिपोर्ट को पलटें, दंतेवाड़ा में माओवादी हमले के बाद (जिसमें सीआरपीएफ के छिहत्तर जवान मारे गए थे) भाजपा द्वारा पारित प्रस्ताव को पढ़ें, चिदंबरम कहीं भी निशाने पर नहीं थे। जैसे ही जांच एजेंसियां हिंदुत्व-आतंक के मसले पर अधिक सक्रिय हुईं, संघ और भाजपा ने चिदंबरम से दूरी बनाना, उनके प्रति हमलावर होना शुरू किया।

याद करें पी. चिदंबरम का वह बयान (12 मई 2010, यू-ट्यूब), जिसमें उन्होंने कहा था कि 'हिंदू आतंकवाद इस देश को सबसे बड़ा खतरा है'। और यह भी जोड़ा था कि 'आंतरिक आतंकवाद को पहचानना मुश्किल होता है'। एक बार पुलिस अधिकारियों को संबोधित करते हुए (25 अगस्त 2010) उन्होंने 'केसरिया आतंकवाद की नई परिघटना' को समझने पर जोर दिया था। फिर चिदंबरम को निशाना बनाने का सिलसिला इस हद तक आगे बढ़ा कि 2-जी घोटाले में उनकी कथित संलिप्तता के नाम पर भाजपा ने संसद में उनका बहिष्कार करना तय किया।

इसे आप इत्तिफाक कह सकते हैं, पर यह गौरतलब है कि भारतीय उपमहाद्वीप में हिंसक हिंदुत्व का उभार दुनिया के विभिन्न हिस्सों में बहुसंख्यक समुदायों के ऐसे ही उभारों की पृष्ठभूमि में सामने आया है। पश्चिमी मुल्कों में भी हम पाते हैं कि इसी किस्म के अतिवादियों के छोटे-बड़े गुट आप्रवासियों, अन्य अल्पसंख्यकों के खिलाफ हिंसा में मुब्तिला हैं। नार्वे में ब्रेविक जैसों के उदय पर लोगों का ध्यान गया है, जिसने कई निरपराध लोगों को मार डाला, मगर अमेरिका, जर्मनी और पश्चिमी जगत के अन्य देशों में इसी किस्म के अतिवादी समूहों के उभार पर अधिक चर्चा नहीं हो सकी है।

यहां दो बातों को प्रस्तुत लेखक स्पष्ट कर देना चाहता है। एक यह कि वह हर किस्म के आतंकवाद के खिलाफ है, चाहे राज्य-आतंकवाद हो या गैर-राज्य कारकों के हाथों अंजाम दिया जाने वाला आतंकवाद, हिंदुत्व का आतंकवाद हो या जिहादियों या इस्लामी ताकतों के हाथों अंजाम दिया जाने वाला आतंकवाद। दूसरी बात यह कि सभी के खिलाफ एक जैसे कानून के इस्तेमाल के ज़रिये ही ऐसी इंसानद्रोही ताकतों पर काबू पाया जा सकता है।

बहरहाल, शिंदे-प्रसंग की खबरों की इस आपाधापी में दो अन्य खबरें आई-गई हो गईं। पहले राष्ट्रीय जांच एजेंसी के खुलासे पर गौर करें। उसने कई उदाहरण पेश किए, जिनमें बताया गया कि किस तरह दक्षिणपंथी अतिवादियों ने अपनी आतंकी गतिविधियों की योजना बनाने के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यालयों का इस्तेमाल किया था। उसके मुताबिक मई 2006 में संघ के वरिष्ठ नेता इंद्रेश कुमार ने हिंदुत्व-आतंक के एक सरगना सुनील जोशी से संघ के नागपुर कार्यालय में ही मुलाकात की थी। (हिंदुस्तान टाइम्स, 25 जनवरी 2013)

समझौता एक्सप्रेस बम धमाके में मुख्यतः पाकिस्तान जा रहे यात्री मारे गए थे। इस मामले में दायर आरोप पत्र के मुताबिक ''सुनील जोशी ने असीमानंद को बताया था कि वह भरत भाई के साथ, जो इस बम धमाके का गवाह है और जिसे अजमेर शरीफ बम धमाके के मामले में आरोपी बनाया गया है, नागपुर गया था, जहां इंद्रेश कुमार से उसने मुलाकात की, जिसने उसे पचास हजार रुपए विस्फोटक सामग्री तथा अन्य सामान हेतु दिया।''

आरोप पत्र में दो अन्य उदाहरण दिए गए हैं जिनसे इस सांठ-गांठ पर रोशनी पड़ती है। सुनील जोशी और उसके दो

सहयोगियों को एक गवाह ने मध्यप्रदेश के डुंगरगांव स्थित संघ कार्यालय में विस्फोटकों के साथ प्रयोग करते 1999 में देखा था और अजमेर शरीफ बम धमाके को लेकर झारखंड के मिहीजाम स्थित संघ कार्यालय में कई बैठकें हुईं।

यों तो 29 दिसंबर 2007 को सुनील जोशी की उसके सहयोगियों ने ही देवास (मध्यप्रदेश) में हत्या कर दी, जिसे लेकर साध्वी प्रज्ञा और अन्य के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया है। मगर इस मामले के एक गवाह शीतल गहलोत ने जांचकर्ताओं को बताया है कि जोशी की हत्या के बाद विस्फोटकों, पिस्तौलों, इलेक्ट्रिक तारों के छड़ से भरे दो बैग संघ के देवास कार्यालय में रखे गए थे, जिनमें से एक बैग को रामजी कलासांगरा ने उठा लिया था जबकि दूसरे बैग को नर्मदा नदी में फेंक दिया गया।

इन खुलासों के अलावा, केंद्रीय गृहसचिव आर. के. सिंह ने इसी दौरान पत्रकारों को बताया कि हिंदुत्व-आतंक के सामने आए कई मामलों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसके आनुषंगिक संगठनों से संबंधित कम से कम दस लोग अभियुक्त हैं। उनके मुताबिक समझौता एक्सप्रेस, मक्का मस्जिद और अजमेर शरीफ बम धमाकों में संलिप्त ऐसे अभियुक्त संघ से किसी न किसी समय जुड़े रहे हैं। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि इन सभी के खिलाफ गवाहों के बयान भी उपलब्ध हैं। उन्होंने बताया कि किस तरह सुनील जोशी 1990 से 2003 तक देवास और महू में संघ के लिए काम करता था। इन दिनों फरार चल रहा संघ 'प्रचारक' संदीप डांगे अजमेर शरीफ, मक्का मस्जिद और समझौता एक्सप्रेस बम धमाकों के लिए वांछित है। उन्होंने यह भी बताया कि इन दिनों जेल में पड़े लोकेश शर्मा, राजेंद्र उर्फ समंदार और कमल चौहान, सभी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से नजदीकी से जुड़े रहे हैं।

लोकेश देवघर में नगर कार्यवाहक था, राजेंद्र वर्ग-विस्तारक और रामजी कलासांगरा, जिसकी कई बम धमाकों के सिलसिले में पुलिस को तलाश है, संघ का निष्ठावान स्वयंसेवक था। अन्य कई संघ स्वयंसेवकों के विवरण भी आर. के. सिंह ने पेश किए जो इन विभिन्न बम धमाकों के अभियुक्त हैं। उन्होंने असीमानंद का भी जिक्र किया जो बचपन से ही संघ की शाखाओं में जाता था और जिसने 1990 से लेकर 2007 तक बनवासी कल्याण आश्रम का काम देखा। वह जिन दिनों डांग (गुजरात) में सक्रिय था, उन दिनों वहां ईसाई आदिवासियों पर काफी हमले हुए थे।

फिलवक्त यह नहीं बताया जा सकता कि जहां संघ और भाजपा, विश्व हिंदू परिषद आदि ने अपनी साझा बैठक में इस मसले को लेकर आगे की रणनीति तैयार की है, उसके जवाब में कांग्रेस के नेतृत्व वाले सत्ताधारी गठबंधन ने कोई रणनीति बनाई है या नहीं। जैसे कि संकेत मिल रहे हैं, ऐसी कोई रणनीति नहीं दिखती।

दरअसल, सांप्रदायिकता के सवाल पर कांग्रेस पार्टी की ढीली-ढाली नीति रही है। जैसा कि एक विश्लेषक ने लिखा है, हाल के दशकों में ''पार्टी कभी-कभी नरम हिंदुत्व जैसा प्रतीत होने वाली 'रक्षात्मक धर्मनिरपेक्षता' और अपने सिद्धांतों के चलते नहीं बल्कि भाजपा के तानों की प्रतिक्रिया में 'तात्कालिक क्षणिक धर्मनिरपेक्षता' के बीच झूलती दिखती रही है।

हिंदुत्व-आतंक के मसले पर यूपीए का ढीला-ढाला रवैया इसी से निकलता है। ऐसे कई उदाहरण देखे जा सकते हैं जहां कांग्रेस शब्दों में सांप्रदायिकता-विरोध और व्यवहार में नरम हिंदुत्व की राह पर चलती दिखी है।

'सनातन संस्था' के मसले पर दिखे परस्पर विरोधी रुख पर गौर करें- जिसके कार्यकर्ता आतंकी हमलों में लिप्त पाए गए हैं, ठाणे और पनवेल में (2008) थिएटरों और सिनेमाघरों में बम रखने या विस्फोट करने के लिए वे दंडित भी हो चुके हैं। यह मसला तभी से लटका हुआ है जबकि 'अतिरिक्त जानकारी' जुटाने के लिए केंद्र सरकार के इस विभाग से उस विभाग तक फाइल सरक रही है। गौरतलब है कि ठाणे-पनवेल बम धमाकों में सनातन संस्था के कार्यकर्ताओं को अदालत द्वारा दोषी ठहराए जाने के बाद महाराष्ट्र सरकार ने हाल ही में केंद्र सरकार से सिफारिश की है कि इस संगठन पर पाबंदी लगा दी जाए। मगर मामला लटका हुआ है। इधर बीच एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह भी हुआ है कि गोवा में सत्ता भाजपा के हाथ में आ गई है जहां सनातन संस्था की खासी सक्रियता है। भाजपा ने इस संगठन पर पाबंदी के प्रस्ताव का हमेशा विरोध किया है।

निश्चय ही यह बात महज 'सनातन संस्था' पर लागू नहीं होती। हम देख सकते हैं कि पिछले दस सालों में एक भी हिंदुत्ववादी संगठन पर पाबंदी नहीं लगी, इस तथ्य के बावजूद कि इस दौरान दर्जनों हिंदुत्व-आतंकी मुस्लिम बहुल इलाकों में, मस्जिदों और कब्रिस्तानों में आतंकी कार्रवाइयों के लिए गिरफ्तार किए गए हैं।

वैसे इस मामले में महाराष्ट्र के आतंकवाद निरोधक दस्ते के प्रमुख हेमंत करकरे अपवाद थे, जिन्होंने वर्ष 2008 में ही पहले सनातन संस्था द्वारा ठाणे, पनवेल आदि स्थानों पर रखे गए बमों की जांच के सिलसिले में, फिर 2008 में मालेगांव बम धमाके की जांच के सिलसिले में हिंदुत्व के आतंकी नेटवर्क का पर्दाफाश किया था।

याद रहे कि 'अभिनव भारत' के कर्नल पुरोहित, प्रज्ञा ठाकुर, दयानंद पांडेय आदि अभियुक्तों ने अपनी आतंकी योजनाओं को अमली जामा पहनाने के लिए समय-समय पर जो बैठकें कीं, उनकी समूची वीडियो रेकार्डिंग न केवल सरकार के पास है बल्कि वह मालेगांव (2008) मामले में दायर आरोप पत्र का हिस्सा है। शंकराचार्य होने का दम भरने वाले दयानंद का जो लैपटॉप बरामद हुआ था, उसमें ऐसी तमाम महत्त्वपूर्ण सूचनाएं दर्ज हैं। यह बात भी रेखांकित की गई है कि किस तरह भारत के धर्मनिरपेक्ष संविधान को धता बता कर मनुस्मृति आधारित 'हिंदूराष्ट्र' बनाने को आमादा इन लोगों ने बाहरी देशों से भी ताल्लुक बनाए थे, जिनमें नेपाल के तत्कालीन नरेश ज्ञानेंद्र और इजराइल सरकार से मिलने भेजे गए दूतों की भी बात की गई है।

क्या अपने कार्यकाल के आखिरी साल में चल रही यूपीए सरकार इस मामले में चेतेगी?

अनुष्का के बहाने कुछ बातें

■ अंजलि सिन्हा

'पवित्र परिवारों' के रिश्तेदारों पर आंख मूंद कर भरोसा करना कोई अक्लमंदी की बात नहीं है। यद्यपि शक करना अच्छा गुण नहीं है, लेकिन मासूमों की हिफाजत भी हम सबकी जिम्मेवारी है।

कोई भी बच्ची तब भी और अब भी अपने इर्द-गिर्द मौजूद उत्पीड़कों से कैसे निपटे? खास तौर से तब, जब उत्पीड़क 'अपना' हो, 'नजदीकी' हो। यह दर्द बयां किया है मशहूर सितार वादक अनुष्का शंकर ने। इस तरह अनुष्का ने उन लाखों-करोड़ों बच्चों-बच्चियों के दर्द को जुबां दी है, जो अपनी अबोधावस्था में 'अपनों' से ही यौन प्रताड़ित होते हैं।

कई बार तो कुछ बच्चियां इतनी अबोध होती हैं कि वे अपने साथ होने वाले उत्पीड़न को समझ भी नहीं पातीं। जब वे होश संभालती हैं तब उन्हें एहसास होता है कि उनके साथ बुरा हुआ, लेकिन कुछ न कर पाने से अपराधबोध से वे ग्रसित हो जाती हैं और समझती हैं कि सिर्फ उनके साथ ही ऐसा हुआ है।

हमारे समाज में बाल यौन उत्पीड़न एक गंभीर और व्यापक समस्या है। अब समय है कि माता-पिता, घर वाले जागरूक हों और अपने बच्चों को अपने ही जानकारों द्वारा किये जाने वाले यौन शोषण से बचाने का इंतजाम करें। अनुष्का ने स्पष्ट ढंग से कहा है कि जब मैं बच्ची थी तब मेरा यौन और मानसिक शोषण हुआ और जिसने मेरे साथ यह सब किया उस पर मेरे माता-पिता को बहुत भरोसा था।

उन्होंने कहा कि मैं बड़ी होती गयी और जैसा कि आम तौर पर महिलाओं के साथ होता है, मेरे साथ भी वैसा ही हुआ। उन्होंने यह भी बताया कि वे हमेशा डर के साये में जीती रही हैं, रात में अकेले टहलने में डर लगता है, कोई पुरुष अगर समय पूछे तो बताने में डर लगता है। अनुष्का ने जिस डर के बारे में बताया है, वह डर हर बड़ी होती लड़की का डर है, भले ही हम हर पुरुष को संभावित पीड़क नहीं मान सकते हैं, लेकिन हर लड़की संभावित पीड़ित होती है, घर-परिवार, जानकार-अनजान या सड़क, स्कूल, दफ्तर, कहीं भी उसे अनचाहे स्पर्श, घूरती निगाहें, अभद्र व्यवहार और यौनिक हिंसा का सामना करना पड़ सकता है।

गौर करने लायक यह है कि बच्चियों के साथ यौन हिंसा की समस्या अमीर तथा उच्च वर्ग से लेकर मध्यम या निम्न मध्य वर्ग या गरीब समुदाय के लोगों तक व्याप्त है। हर जगह अलग-अलग प्रकार से उत्पीड़न करने वाले हैं।

अनुष्का की तरह हाईक्लास सोसाइटी के लोगों की बच्चियां भी अपने ही घर आंगन में असुरक्षित हैं, ठीक वैसे ही जैसे गरीबों के यहां की बच्चियां आसानी से शिकार बनाये जाने के लिए उपलब्ध हैं। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि पानी से बाहर नज़र आने वाले हिमखंड के सिरे की तरह ही यह मामला दिखता है, मसले की व्यापकता एवं गहराई की तरफ अधिकतर लोगों की निगाह तक नहीं जाती।

यूपीए सरकार के पहले चरण में केंद्रीय समाज एवं बाल कल्याण मंत्रालय ने (जब रेणुका चौधरी मंत्रालय का कामकाज संभाल रही थीं) खुलासा किया था कि भारत में 53 प्रतिशत बच्चे यौन हिंसा के शिकार होते हैं। स्पष्ट है कि इसमें 'आत्मीय' कहे जाने वाले दायरों के मामले ज्यादा होते हैं।

यह भी उजागर हुआ कि बच्चे बड़ों के द्वारा, अपने गुरुजनों के द्वारा, रिश्तेदारों के द्वारा तो पीड़ित हैं ही, वे पर्यटकों द्वारा तथा धार्मिक आस्था के नाम पर भी यौन अत्याचार झेलते हैं। इसमें कभी-कभी उनसे थोड़े बड़े बच्चे भी अत्याचारी बनते हैं अर्थात बचपन में खेल-खेल में ही वे दूसरे को गंभीर आघात पहुंचाते हैं, जिसका साया जिंदगी भर पीड़ित बच्चे के साथ रहता है। बच्चों के आक्रामक व्यवहार की खोजबीन होनी ही चाहिए और उसे कैसे शुरू से जेंडर संवेदनशील बनाया जाये, इस पर भी काम किया जाना चाहिए लेकिन उससे बड़ा, व्यापक और गंभीर मुद्दा है बच्चों के खिलाफ बड़ों द्वारा किया गया अपराध।

दुनिया के कई विकसित देशों में बच्चों का इस्तेमाल आसान नहीं है। वहां के लोग हमारे जैसे देश में पहुंचते हैं और बच्चों को आसानी से शिकार बना लेते हैं। हम अकसर बाज़ार या विकास के कुछ ऐसे ही पैमानों के आधार पर विकसित होने का दंभ भरते हैं, लेकिन बच्चों या कमजोर वर्गों की स्थिति के मामले में तीसरी दुनिया के पैमाने को भी पीछे छोड़ बर्बर की श्रेणी में आ जाते हैं। हाल में तामिलनाडु के महाबलिपुरम् से खबर आयी कि कई गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे अनाथालय बच्चों के 'शौकीनों' का शौक पूरा करते हैं। गोवा से

शेष पृष्ठ 7 पर

कैसे खत्म हो अश्लीलता का कारोबार

■ अंजलि सिन्हा

पंजाबी मूल के गायक हनी सिंह विवादित हो गए हैं। वैसे तो उनकी शोहरत कम नहीं है, लेकिन अपने खासे आपत्तिजनक गाने के कारण पूरे देश के निशाने पर आ गए हैं। इसके बाद विवाद इस कदर बढ़ा कि उनके गानों को लेकर उनके खिलाफ केस दायर हो गए। नए साल की पूर्वसंध्या पर गुड़गांव के एक बड़े होटल में आयोजित उनके कार्यक्रम को जन दबाव के चलते रद्द करना पड़ा। उनके गानों पर पाबंदी लगाने के लिए सोशल मीडिया पर मुहिम भी चलती दिखती है। उन्होंने अश्लील तथा महिलाओं को अपमानित करने वाले, उनके खिलाफ हिंसा को बढ़ावा देने वाले गाने गाए हैं। वैसे बाद में हनी सिंह ने यह कहकर पल्ला झाड़ने का प्रयास किया कि ये गीत उनके लिखे नहीं हैं। इनमें से एक गाने में वह बाकायदा किसी अनजान युवती के साथ जबरन बनाए रिश्ते को सुनाते हैं और अपने आप को रेपिस्ट कहकर खुद की तारीफ करते हैं। यह विरोध पहली बार नहीं है।

दिल्ली सामूहिक दुष्कर्म की जघन्य घटना से पहले पंजाब के कुछ महिला तथा प्रगतिशील संगठनों ने भद्दे गानों को गाने वाले तथा ऐसे कुछ बैंड्स के खिलाफ मुहिम छेड़ी थी। जालंधर जैसी जगहों पर इन गीतों को बेचने वालों को अपनी दुकान समेटनी पड़ी। समय-समय पर विरोध होता रहा है, लेकिन बड़े पैमाने पर इसका आनंद उठाने वाले मौजूद हैं। यानी इन गानों का अपना बाज़ार है। लोग तरह-तरह से इसका विश्लेषण कर रहे हैं और कारणों पर अपनी समझदारी साझा कर रहे हैं कि आखिर हमारा समाज महिलाओं के प्रति हिंसक क्यों हो गया है? मुद्दा महज कुछ हजार दुष्कर्मियों का नहीं है और न ही अभी तक अनसुलझे एक लाख से अधिक मामलों का है, बल्कि मुद्दा महिलाओं के प्रति व्यवहार का है। चाहे सार्वजनिक स्थल हो या निजी दायरा, महिला को भोग की वस्तु समझने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। दुष्कर्मों की तुलना में कई गुना अधिक वह हिंसा होती है जो मुद्दा भी नहीं बन पाती। मसलन छींटाकशी, घूरना तथा भद्दा, अनचाहा स्पर्श करना आदि। इसमें भी महिलाओं को चोट पहुंचाई जाती है। यौन हिंसा जिसे हल्के रूप में छेड़छाड़ कहा जाता है, की घटनाएं जितनी दर्ज होती हैं उससे कई गुना अधिक घटित होती हैं। बाहर आती दबी हुई कुंठा विचार-विमर्श में यह बात भी उभरी है कि यौन हिंसा क्या महज कानून एवं व्यवस्था का मसला है। क्या कानूनों के सख्त होने से सारी समस्या हल हो जाएगी? यह सही है कि प्रभावी तथा सख्त कानूनी प्रक्रिया का अभाव तो है ही और उसे तत्काल दुरुस्त किए जाने की ज़रूरत है।

इन नारी विरोधी व्यवहारों को वैधता प्रदान करने वाला दूसरा स्तर मानसिकता का है। ऐसी सोच जो दूसरों के अधिकारों का हनन करे, उन्हें अपमानित करे और उसे मुसीबत में डालकर भी आत्ममुग्ध हो। लिहाजा इस पर बात करना भी ज़रूरी है कि ऐसे लोगों की ऐसी मानसिकता कैसे और किन-किन चीजों के प्रभाव में बनती है? सांस्कृतिक प्रचार-प्रसार के माध्यम एक सशक्त हथियार हैं जो व्यक्ति को भीतर तक प्रभावित करते हैं। हमारे देश में फिल्म और टीवी के लिए तो सेंसर बोर्ड है, लेकिन ऐसे एल्बम प्रकाशित करने या स्वतंत्र रूप से गायकी करने पर उचित निगरानी की कोई व्यवस्था नहीं है। जो है भी वह इतनी ढीली-ढाली है कि ऐसे मामले उसमें उठते ही नहीं हैं। जिस तरह हनी सिंह लोकप्रिय हो गए हैं, उसी तरह मैथिली, हरियाणवी, भोजपुरी या कई अन्य स्थानीय भाषाओं के गायक भी चर्चित हुए हैं। तकनीक के सस्ता होने से सीडी-डीवीडी बनाना आसान हुआ है। ऐसे गानों के बाज़ार को देखते हुए ऐसे कई गायक वहां उभरे हैं। इसीलिए मौजूं मुद्दा यह भी है कि उस बाज़ार की पहचान की जाए। यह समझने की ज़रूरत है कि पुरुषों का एक पूरा वर्ग तरह-तरह की कुंठाएं पाल कर बड़ा होता है। ऊपर से सभ्य सुसंस्कृत दिखने वाला भी एक प्रकार की भड़ास अंदर भरे हुए होता है और मौका मिलते ही उसकी कुंठा उजागर हो जाती है।

हनी सिंह की बात थोड़ी देर के लिए भूल जाएं और जायजा लें कि हास्य रस की कविताओं में भी यौनिक रिश्तों की बात की जाती है। पुरुष के परस्त्री से लुकाछिपी रिश्तों की बात की जाती है। वाराणसी जिसे भारतीयों का एक हिस्सा पवित्र नगरी कहता है, में होली के अवसर पर अस्सी घाट पर होने वाले कवि सम्मेलनों में शिरकत करने पर आप

अंदाजा लगा सकते हैं कि किसी प्रोफेसर के किसी अन्य स्त्री के साथ रिश्तों या ऐसे ही तमाम फूहड़, अश्लील गीत और कविताएं सुनने के लिए कितने हजार लोग जुटते हैं। वहां न पहुंचने वाले लोगों तक यह मनोरंजन पहुंचाने के लिए दूर-दूर तक स्पीकर लगाए जाते हैं। पार्टियों में मौज-मस्ती के नाम पर जिनमें हनी सिंह मार्का लोग गाने के लिए आमंत्रित किए जाते हैं और इसके लिए उन्हें लाखों का भुगतान भी किया जाता है। आइटम गर्ल्स के ठुमके देखने सुनने के लिए टिकट खरीद में भीड़ को संभालना मुश्किल हो जाता है। यहां तक कि खेल की मार्केटिंग करने के लिए भी चीयरलीडर्स का जलवा बिखेरा जाने लगा है। असली बाज़ार की पहचान ज़रूरी है ताकि यह पता लगाया जा सके कि कौन हैं वे लोग जो इस मनोरंजन का बाज़ार बना रहे हैं और इसके लिए बड़ी रकम चुकाने को भी तैयार रहते हैं? शहरों में, छोटे कस्बों तथा गांवों में सवारियां ढोने वाले वाहनों में लोकधुन तथा स्थानीय भाषाओं में दोहरे मतलब वाले फूहड़ गाने कोई भी आसानी से सुन सकता है।

जब ऐसे गाने बजते हैं तो सवारियों और ड्राइवर-कंडक्टर के बीच मानो एक प्रकार का संवाद स्थापित हो जाता है और वे उन गानों से चार कदम आगे जाकर आपस में हंसी-मजाक में जुट जाते हैं। ऐसे मौकों पर हम कितने लोगों की गिनती कर सकते हैं जो यह सब नापसंद करेंगे? कितने लोग उस सार्वजनिक वाहन में ऐसे गाने न बजाने के लिए दबाव डालेंगे? निश्चित ही मसला सिर्फ ऐसे गीतों, संवादों या चुटकुलों को न सुनने या देखने का ही नहीं है। यह सब लोगों की मनःस्थिति को प्रभावित और निर्मित करता है। ऐसे लोग ज़रूर अधिक संख्या में मौजूद हैं जिन्हें वह सब देखना-सुनना अच्छा लगता है। यही वे लोग हैं जिनका हवाला देकर वह सब परोसने वाले कहते हैं कि चाहने वाले चाहते हैं तभी तो वे परोसते हैं, लेकिन इससे परोसने वालों पर नियंत्रण की आवश्यकता खत्म नहीं हो जाती। कोई न कोई सीमा रेखा हमारे अपने भीतर भी खींची जानी चाहिए।

इंस्टीट्यूट फॉर डेवलपमेंट एंड कम्युनिकेशन के निदेशक प्रमोद कुमार का यह कथन सही है कि कला की अभिव्यक्ति या हल्के-फुल्के मनोरंजन के नाम जो लोग इन संस्कृतियों को चलने देने के पक्ष में होते हैं, वे दरअसल समाज में गहरे पैठी पितृसत्तात्मक सोच एवं कुंठाओं को अभिव्यक्त करने की छूट चाहते हैं। कुछ लोग इस मानसिकता का फायदा उठाकर खुद मालामाल हो जाना चाहते हैं। वे जिस तरह कोई वस्तु बेचते हैं, वैसे ही असभ्यता भी बेचते हैं। उनके इस कारोबार में अबोध अपरिपक्व बालक भी यह सब आत्मसात करते हुए परिपक्व होते हैं। फिर ऐसे लोगों की संख्या क्यों न बढ़े जो राह चलते अपनी इस मानसिकता और कुंठा को अभिव्यक्त कर दें? कहा जाता है कि हमारे यहां सामाजिक निगरानी व्यवस्था अधिक मजबूत है। असल में सामाजिक निगरानी की यह व्यवस्था भी स्त्री जाति की गरिमा के खिलाफ ही रही है। यहां नैतिक पहरेदारी की व्यवस्था रही है, जिसमें किन्हीं दो लोगों का प्यार करना अनैतिक समझा जाता है, हाथों में हाथ डाले घूमना अश्लील हो जाता है। इन्हीं नैतिक मान्यताओं में अपनी मर्जी की शादी मंजूर नहीं होती और ऐसा करने पर सर कलम को वैधता मिलती है। दूसरी तरफ, पहले के समय में भी गांवों, कस्बों या शहरों में नौटंकी में या धार्मिक सामाजिक आयोजनों में भी उसी तरह महिलाएं परोसी जाती थीं, जिस तरह आज फिल्मों में आइटम गर्ल ठूंसी जाती हैं, जो किसी उत्तेजक गाने पर भाव-भंगिमाओं के साथ दर्शकों को लुभाती हैं और हनी सिंह के गाने लोकप्रियता के पायदान पर नए मुकाम हासिल करते हैं।

अनुष्का के बहाने कुछ बातें

पृष्ठ 5 का शेष...

भी ऐसी खबरें आती हैं।

दूसरा गंभीर सवाल हमारे परिवेश का है, जिसमें बीमार मानसिकता पलती है, जो बच्चों को सॉफ्ट टारगेट बनाती है। उत्पीड़न की इतनी घटनाएं सामने आने पर भी माता-पिता तथा परिवार चेतने को तैयार नहीं हैं। लोगों को यह समस्या अब भी किसी दूसरी दुनिया की समस्या लगती है। कुछ महीने पहले की खबर है, उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के मोहम्मदाबाद की। अपने परिवार में बेटी अपने ही चाचा के हाथों यौन अत्याचार का शिकार होती थी। बेटी ने जब अपने मां-बाप से यह बात शेयर करने की कोशिश की, तब उन्होंने उसे ही चुप करा दिया। बाद में वह बनारस पढ़ने गयी। वहां उसे उसके फूफा ने उसके साथ यौन अत्याचार किया। लड़की किसी बहाने जब मोहम्मदाबाद लौटी, तब घर जाने के बजाय सीधे पुलिस थाने गयी और इसके बाद ही इस लड़की को अपने कहे जाने वाले यौन अत्याचारियों से मुक्ति मिली।

जहांआरा और शत्रुसाल की प्रेम-कथा

■ कुमार नरेन्द्र सिंह

सन् 1631 के फरवरी का महीना। गजब की ठंड पड़ी थी उस साल। फरवरी महीना होने के बावजूद कड़ाके की सर्दी जारी थी। बादशाह शाहजहां अपनी प्यारी बेगम की मौत के बाद पहली बार बुरहानपुर किले के दीवान-ए-आम में तशरीफ लाए थे। अभी सिर्फ छह महीने पहले ही तो उनकी बेगम मुमताज-उल-जमानी का इंतकाल हुआ था और उसे बुरहानपुर के जैनाबादी बाग में दफ़्न कर दिया गया था। 29 जनवरी, 1631 को मुमताज महल के ताबूत को जैनाबादी बाग से निकाल कर आगरा के सिकंदराबाद में दफ़नाया गया। बादशाह के आने से दीवान फाजिल खां और अन्य मनसबदारों के चेहरे खिले हुए थे। इस बीच एक दुखद घटना हुई। जिस दिन बुरहानपुर से मुमताज महल के ताबूत को रवाना किया गया, उसी दिन शाहजहां को खबर मिली कि बालाघाट में उनके वफादार मनसबदार बूंदी के राजा राव रतन हाड़ा गुजर गए। शाहजहां ने फौरन ही रतन हाड़ा के पुत्र शत्रुसाल को बूंदी फरमान भेजकर उसे तीन हजारी जात, दो हजार सवार का मनसब का खिताब बख्शा और फौरन बुरहानपुर पहुंचने का हुक्मनामा जारी किया। हुक्मनाना मिलने के दो महीने के अंदर ही शत्रुसाल बुरहानपुर के नजदीक ताप्ती के उस पार आ पहुंचा और अगले दिन बुरहानपुर शहर में अपने दादा के महल में दाखिल हो गया।

दीवान-ए-आम में तशरीफ लाने वाले मनसबदारों समेत किलेदार तक को मालूम था कि बूंदी के राजा शत्रुसाल बादशाह की कदमबोशी के लिए आ रहा है। जैसे ही चोबदार ने रोबदार अंदाज़ में आवाज़ दी 'बूंदी के मरहूम राजा रतन हाड़ा के पुत्र और नए राजा राव शत्रुसाल आलमपनाह को अपनी नज़र पेश करने के लिए दीवान-ए-आम में हाजिर हो रहे हैं', सभी सभासदों की नज़रें सीढ़ियों की तरफ उठ गईं। सबने देखा कि लंबी कद-काठी का एक अत्यंत खूबसूरत 20 वर्षीय बांका नौजवान, जिसने केसरिया रंग का अंगरखा और केसरिया रंग का ही पायजामा पहन रखा था। उसका कसरती बदन उसके पोशाक से बाहर भी साफ-साफ दिखाई दे रहा था। चीते की तरह चौकन्नी चाल और गजनफर-सा निडर वह धीरे कदमों से दीवान-ए-आम की तरफ बढ़ता आ रहा था। उसका चौड़ा माथा, सुतवां नाक, कानों में लटकते कुंडल और हल्की ऐंठी हुई उसकी मूंछें उसकी खूबसूरती को चार चांद लगा रही थीं। जहां सिर पर कलगीदार केसरिया पगड़ी उसके आन-बान और शान की गवाही दे रहे थी, वहीं कमर में लटकी सोने की मूंठवाली तलवार उसके मिजाज का बयान थी। पांच लड़ियों की मोतियों का कंठहार उसके गले में लिपट कर अपने को धन्य महसूस कर रहा था। दीवान-ए-आम में पहुंच कर शत्रुसाल ने बादशाह शाहजहां को तीन बार शाही कोर्निश की और फिर दाराशिकोह, औरंगजेब और मुरादबख्श को भी कोर्निश बजाई। उसकी मासूमियत सबके दिल को छू गई।

दीवान-ए-आम में तो सबकी निगाहें शत्रुसाल पर टिकी ही हुई थीं, पर्दे के पीछे बैठी बेगमें और शहजादियां भी शत्रुसाल की अबोध मर्दाना सुंदरता को सराह रही थीं। इन्हीं बेगमों और शहजादियों के बीच बैठी थी जहांआरा। वह महज एक शहजादी ही नहीं थी, बल्कि बादशाह की सबसे चहेती बेटी भी थी। वह बादशाह शाहजहां का आंख-कान बनकर रहती थी। चाहे वह वलीअहद दाराशिकोह ही क्यों न हों, उसके हुक्म को नज़रअंदाज़ करने की हिमाकत नहीं कर सकते थे। उन्हें बेगम शहजादी का खिताब स्वयं उसके वालिद शाहजहां ने दिया था। जहांआरा प्यार भरी नज़रों से शत्रुसाल को अपलक देख रही थी, जबकि बेगमें और अन्य शहजादियां जहांआरा को देखे जा रही थीं। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि जहांआरा के दिल में शत्रुसाल के लिए प्रेम का अंकुर फूट चूका है। शत्रुसाल को लेकर वे जहांआरा से शरारत भी करने लगीं। बहरहाल, राजा शत्रुसाल के दीवान-ए-आम से निकलते ही जहांआरा चमनी बेगम के साथ अपने महल को लौट चली। महल के नजदीक पहुंचने पर उसने देखा कि उसका ख़ास वफ़ादार और राज़दार हिजड़ा हुस्नबानू भी पीछे-पीछे चला आ रहा है। पहले यह ख्वाजासरा दाराशिकोह की सेवा में तैनात था लेकिन पिछले तीन साल से वह शहजादी बेगम जहांआरा की खिदमत में लगा था। शहजादी के पास पहुंच कर हुस्नबानू ने जहांआरा को कोर्निश बजाया तो आंखों ही आंखों में जहांआरा ने पूछ लिया कि वह कहां से आ रहा है। हुस्नबानू ने बताया कि सालम बजाने के लिए वह दाराशिकोह के महल पर गया था और वहीं से आ रहा है। इसके बाद उसने अपने चोगे से शेख-सादी की रुबाइयों की किताब निकाली और जहांआरा को सौंपते हुए कहा कि शहजादे ने आपके लिए भेजी है। किताब लेकर जहांआरा ने पूछा 'भाईजान का क्या हाल है?'

'बेगम साहिबा, शहजादे बिल्कुल अच्छे हैं और उन्होंने आपको आदाब बजाया है।' बातों-बातों में हुस्नबानू ने जहांआरा को यह भी बताया कि आज दाराशिकोह के हुजूर में बूंदी का नया राजा राव शत्रुसाल भी मौजूद था और वह शहजादे को हिंदवी में कोई ग़ज़ल सुना रहा था। मुझे भी उसकी ग़ज़ल पसंद आई, लेकिन शहजादे तो उसकी हर सफे पर दाद दे रहे थे। जहांआरा ने चौंकते हुए पूछा, 'क्या राजा हिंदवी में कविता करता है?' ख्वाजासरा ने हामी भरी और कहा कि राजा ने बेगम साहिबा को आदाब बजाया है। जहांआरा ने सकुचाते हुए कहा, 'सुना है बूंदी का राजा ताप्ती किनारे अपने दादा के महल में ठहरा है। उधर कभी जाना हो तो हमारा भी उसे आदाब कहना।' तजुर्बेकार हुस्नबानू को माजरा समझते देर नहीं लगी। वह शाही महल के हर रंग-ढंग से वाकिफ था। वह बोला, 'बेगम साहिबा, मैं कल ही बूंदी के राजा के पास जाकर आपका आदाब तो बोलूंगा ही, साथ में यह भी कहूंगा कि शहजादे की तरह वह बेगम शहजादी को अपनी हिंदवी कविता सुनाकर उनका दिल बहलाए। ठीक रहेगा न बेगम साहिबा।' जहांआरा समझ गई कि हुस्नबानू उसके दिल की बात जान गया है लेकिन वह खामोश ही रही। जहांआरा को खामोश देखकर हुस्नबानू ने फिर कहा, 'हमारे ख़याल से कल आहूखाना बाग में दोपहर को राजा राव शत्रुसाल को आपके हुजूर में पेश किया जाए। अचानक प्रस्ताव से जहांआरा सकपका गई। 'क्या हमारी इतनी जल्दी मुलाकात मुनासिब होगी,' शहजादी ने पूछा। हुस्नबानू ने इठला कर कहा कि यह सब कुछ मुझ पर छोड़ दीजिए।

अब शहजादी को महल काटने लगा था। वह बेचैन इधर-उधर टहल रही थी। शहजादी की बेचैनी देखकर उसकी खास बांदी कोयल ने आखिर पूछ ही लिया, 'शहजादी आप इतनी परेशान क्यों है। आप मुझसे कुछ छिपा रही हैं। अगर आप बता सकें तो शायद मैं आपकी मदद कर पाऊं।' शहजादी ने आखिरकार अपने दिल की बात कोयल को बता दी। कोयल ने कहा कि इसमें कौन-सी बड़ी बात है। आप किसी बहाने से शहजादे दाराशिकोह को भी आहूखाना बाग में बुला लें। शहजादे की मौजूदगी में आप राजा शत्रुसाल की कविता का आनंद भी उठा सकती हैं और उनसे आपकी मुलाकात भी हो जाएगी। इसके बाद शहजादी जहांआरा कोयल को लेकर दाराशिकोह के महल की ओर चल पड़ी। अपने महल में शहजादी जहांआरा को अचानक देखकर दाराशिकोह चौंक गया और पूछा कि सब खैरियत तो है। शहजादी ने कहा कि हां, सब खैरियत है। दरअसल, मैं आपको यह बताने आई हूं कि अब्बा हुजूर ने शाही मोहर 'उजक' नाना आसफ खां से लेकर हमें सौंपा है, इसलिए सोचा कि भाईजान को खबर कर दूं। इसके बाद अपने भाई को खुश करने के लिए जहांआरा ने एक डिबिया खोलकर काफी बड़ा हीरा शहजादे के हाथ पर रख दिया और अदब से कहा, 'मेरी तरफ से एक छोटी-सी भेंट है, आप कुबूल करें।' 'आपाजान यह तो अनमोल हीरा है, कहां से मिला आपको।' शहजादी ने बताया कि यह हीरा उसे मरहूम मुमताज महल यानी उसकी मां ने दिया था। भाई को खुश देखकर जहांआरा ने बात का रुख बदला। वह जल्दी से जल्दी असली बात पर आना चाहती थी। वह बोली, 'भाईजान, हमने सुना है कि बूंदी का राजा शत्रुसाल हिंदवी में बड़ी अच्छी कविता करता है, हालांकि वह अभी छोटी उम्र का ही है।' 'हां, वह हिंदवी में अच्छी कविता करता है लेकिन आपको कैसे मालूम हुआ।' शहजादी ने बताया कि ख्वाजासरा हुस्नबानू से उसे पता चला। इसके बाद जहांआरा ने दाराशिकोह से राजी करने वाले अंदाज में पूछा, 'भाईजान, अगर आप मुनासिब समझें तो कल दोपहर में आहूखाना बाग में धूप का आनंद लिया जाए और राजा की कविता का भी।' दाराशिकोह ने कहा कि इसमें भला उसे क्या ऐतराज हो सकता है। भाई के मुंह से इतनी बात सुनते ही जहांआरा ने ताली बजाई। ताली की आवाज़ सुनकर कोयल और ख्वाजासरा दोनों हाजिर हो गए। 'शहजादे का इकबाल बुलंद हो, हमारे लिए क्या हुक्म है,' हुस्नबानू ने अदब से पूछा। दाराशिकोह कुछ कहता उसके पहले ही जहांआरा बोल पड़ी, 'हुस्नबानू, आज बूंदी के राजा के महल चले जाना और कहना कि शहजादे कल दोपहर में आपकी कविता सुनने को ख्वाहिशमंद हैं और कल आहूखाना बाग में आपका इंतजार करेंगे।' इतना कहकर वह कोयल और हुस्नबानू को लेकर अपने महल की ओर रवाना हो गई।

अगले दिन शहजादा दाराशिकोह और बेगम शहजादी जहांआरा आहूखाना बाग में राजा शत्रुसाल के इंतजार में टहल रहे थे। अचानक बाग के पूर्वी दरवाजे पर हल्की-सी आहट हुई, राजा बाग के अंदर आ चुका था। बाग के अंदर कदम रखते ही हुस्नबानू राजा को आदाब बजाते हुए बोला, 'मुबारक हो राजा साहब, आज अच्छी साइत है, शहजादे के साथ-साथ बेगम शहजादी जहांआरा से आपकी मुलाकात मुबारक हो।' बूंदी के राजा ने अपने अंगरखे की जेब से मोती निकाल कर हुस्नबानू की हथेली पर रख दिया। इसके बाद शहजादे और शहजादी राजा शत्रुसाल की मेजबानी के लिए आगे बढ़े। राजा भी तेज कदमों से उनकी ओर चला आ रहा था। पास पहुंच कर राजा ने दाराशिकोह और जहांआरा दोनों को कोर्निश बजाई। दाराशिकोह ने अपनी आपाजान से राजा का परिचय कराया और बताया कि आपकी कविता की शोहरत सुनकर वह यहां आई हैं और आपकी कविता सुनने की ख्वाहिशमंद हैं। इसके बाद सभी बाग में बिछाए गए कालीन पर बैठ गए। खामोशी जहांआरा ने ही तोड़ी। 'राजा साहब, सुना है आप हिंदवी में बड़ी अच्छी कविता करते हैं?' राजा ने सकुचाते हुए जवाब दिया, 'ऐसी तो कोई

बात नहीं, बस तुकबंदी कर लेता हूं।' फिर शहजादे दाराशिकोह की गुजारिश पर राजा ने अपनी लिखी एक कविता सुनाई। जहांआरा को वह कविता बेहद पसंद आई। वह अपनी उंगली से अंगूठी निकालने लगी ताकि राजा को भेंट कर सके लेकिन शर्म-ओ-हया के चलते हिम्मत नहीं जुटा पा रही थी। शहजादा दाराशिकोह अपनी आपाजान की उलझन समझ गया और बोल पड़ा, 'आपाजान, जो आप करना चाहती हैं उसे फौरन से पेश्तर कर डालिए। वैसे राजा की कविता के लिए यह इनाम काफी नहीं है।' शहजादी बोली, 'हां भाईजान आप सही फरमा रहे हैं लेकिन मैं इसे इनाम के रूप में इन्हें नहीं दे रही।' इसके बाद जहांआरा ने अपनी उंगली से अंगूठी निकाली और कहा, 'इसे इनाम नहीं बल्कि हमारी निशानी समझकर अपने पास रख लीजिए, शायद कभी आपके काम आ जाए।' राजा ने बड़े अदब से झुककर अंगूठी अपने हाथ में ले ली। इस बीच शहजादी की उंगलियां राजा की उंगलियों से छू गईं। इस हल्की छुअन से शहजादी का पूरा वजूद सिहर उठा। उधर राजा शत्रुसाल की भी यही दशा थी।

लेकिन नियति को शायद यह मंजूर नहीं था कि दोनों एक-दूसरे से मिलते-जुलते रहें। हुआ यह कि उसी समय दक्कन में थोड़ी बदअमनी फैल गई। उस समय दक्कन की कमान संभालने वाला कोई नहीं था, इसलिए महावत खां खानखाना को वहां की कमान सौंपी गई। उसने बादशाह शाहजहां से बूंदी के राजा राव शत्रुसाल को भी अपनी मदद के लिए वहां भेजने की गुजारिश की, जिसे बादशाह ने मान लिया। जब जहांआरा ने सुना कि राजा शत्रुसाल भी दक्कन जा रहे हैं तो उसे अपनी दुनिया उजड़ती हुई नज़र आई। उसके लिए यह किसी सदमे से कम नहीं था। उसे महावत खां पर बेहद गुस्सा आ रहा था, उसका वश चलता तो वह महावत खां की दाढ़ी नोंच लेती। हालांकि वह चाहती तो शाहजहां से सिफारिश कर वह राजा शत्रुसाल को आगरा में ही कोई ओहदा दिलवा सकती थी लेकिन तब जहांआरा पर उंगलियां उठ सकती थीं। इसलिए वह चुपचाप अपने महल में आंसू बहाती रही। उसके दर्द को सिर्फ कोयल और हुस्नबानू ही समझ सकते थे, पर वे भी मजबूर थे। जहांआरा के मन में अमीर खुसरो की ये पंक्तियां उमड़-घुमड़ रही थीं

सजन सकारे जाएंगे, नैन मरेंगे रोय
बिधना ऐसी रैन कर, भोर कभी ना होय।

दक्कन में अमन कायम करने के बाद बादशाह शाहजहां के हुक्म के मुताबिक राजा शत्रुसाल दौलताबाद की ओर तेजी से बढ़ रहे थे। बादशाह शाहजहां वहां पहले ही पहुंच चुका था और दौलताबाद की खास रक्कासा हैदरजान के आगोश में करार ढूंढ़ रहा था। बादशाह शाहजहां के साथ शहजादी जहांआरा भी दौलताबाद पहुंच चुकी थी और दौलताबाद किले को आबाद किया था। अगले दिन राव शत्रुसाल भी दौलताबाद आ पहुंचा। कोयल ने हुस्नबानू को बूंदी के राजा के खेमे में भेजा। राजा का खेमा दौलताबाद के किले से मील भर की दूरी पर गोदावरी नदी के किनारे लगा था। हुस्नबानू ने शत्रुसाल के खेमे के बाहर ही अपनी पालकी रुकवा दी और वह खुद शत्रुसाल से मिलने के लिए चल पड़ा, लेकिन खेमों की भीड़ में कहारों को पता नहीं चला कि हुस्नबानू किससे मिलने गया। जब वह शत्रुसाल के खेमे के पास पहुंचा तो पहरेदारों ने उसे रोका और उसका परिचय जानना चाहा। हुस्नबानू ने जब उन्हें शाही अंगूठी दिखाई तो पहरेदारों का सरदार अदब के साथ झुक गया और अंदर जाकर राजा शत्रुसाल को हुस्नबानू के आने की जानकारी दी। राजा ने उसे फौरन अपने खेमे के अंदर बुलाया। राजा को कोर्निश बजाने के बाद हुस्नबानू ने कहा, 'बेगम साहिबा शहजादी जहांआरा काफी दिनों से आपकी राह देख रही थीं लेकिन आपने सफर में काफी वक्त लगा दिया। बेगम साहिबा जल्द से जल्द आपसे मिलने की ख्वाहिशमंद हैं।' राजा समझ गए कि हुस्नबानू उनके इश्क की राजदार है। उन्होंने कहा, 'मैं खुद भी यही चाहता हूं लेकिन शहजादी से मुलाकात कराने की जिम्मेदारी तो आप ही उठा सकते हैं।' हुस्नबानू ने राजा को बताया कि वह दो दिन बाद दौलताबाद के किले में पीरवाड की दरगाह में शहजादी से मिलें। जब शत्रुसाल ने कहा कि यह कैसे संभव है तो, ख्वाजासरा ने मुस्कराते हुए बड़े विश्वास से कहा कि मुलाकात कराने की जिम्मेदारी हमारी है। इतना कहकर हुस्नबानू वहां से किले के लिए निकल पड़ा। चलते समय राजा शत्रुसाल ने उसे विदाई में एक मुट्ठी अशर्फियां दीं। दोपहर बाद हुस्नबानू शहजादी जहांआरा के हुजूर में पहुंचा और उन्हें बताया कि राजा साहब परसों दोपहर में पीरवाड साहब की दरगाह में उनके रू-ब-रू पेश होंगे।

आज मुगल शहजादी बेहद खुश नज़र आ रही थी, आती भी क्यों न, आखिर उसे अपने आशिक से मिलने का मौका जो मिला था। जहांआरा ने सुनहले रंग की जड़ाऊ पोशाक पहनी। कोयल ने आज अपने मन से शहजादी का श्रृंगार किया। आज शहजादी ने राजस्थानी लिबास पहन रखा था, जो उसके हुस्न के साथ मिलकर गजब ढा रहा था। जब शहजादी सज-धज कर तैयार हुई तो कोयल ने मुस्कराते हुए कहा, 'बेगम साहिबा गुस्ताखी माफ हो, अगर आपकी इजाजत हो तो आपके चेहरे पर काला निशान बना दूं। कनीज को खौफ है कि शहजादी को कहीं किसी की नज़र न लग जाए।' उसकी बात सुनकर शहजादी भी अपनी हंसी नहीं रोक पाई। हाथी पर सवार होकर शहजादी दौलताबाद किला देखने के बहाने राजा शत्रुसाल से मिलने के लिए गोदावरी तट की ओर चल पड़ी। शहजादी के

ठीक पीछे एक दूसरे हाथी पर शहजादी की खास बांदी कोयल बैठी थी। उसके पास शहजादी की ज़रूरत में काम आने वाले सामान रखे थे। खास बात यह थी कि वक्त ज़रूरत के लिए आज कोयल ने अपने पास एक जड़ाऊ कटार और तलवार भी रख लिया था। उधर बूंदी के राजा पहले से ही जहांआरा का इंतज़ार कर रहे थे। शहजादी जैसे ही हाथी से उतरी, राजा शत्रुसाल ने आगे बढ़कर उनकी खिदमत में तीन बार कोर्निश की, जिसका जवाब शहजादी ने सिर झुकाकर दिया। गोदावरी नदी में सैर के लिए राजा ने पहले से ही वहां एक खास नौका तैयार कर रखी थी। शहजादी शत्रुसाल के साथ उस खास नाव की तरफ बढ़ चली और कोयल को दूसरी नाव में बैठने के लिए कहा। शहजादी की तातारी बांदियां अपने नंगी तलवारें लेकर दूसरी नाव पर सवार हो गईं। आज के नौका-विहार की खास बात यह थी कि जिस नाव पर शहजादी सवार थी, उसे खुद राजा शत्रुसाल खे रहे थे। राजा को नाव खेते देखकर शहजादी मंद-मंद मुस्करा रही थी। नाव खेते-खेते राजा ने शहजादी पर पूरी निगाह डाली और यह देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ कि मुगल शहजादी ने राजस्थानी लिबास पहन रखा है। राजा ने कहा, 'बेगम साहिबा, गुस्ताखी माफ हो, आपका इस कदर राजस्थानी वेश में आना...।' शत्रुसाल ने अभी अपनी बात पूरी भी नहीं की थी कि शहजादी शरारत से बोल पड़ी, 'क्यों आपको पसंद नहीं आया, क्या इसमें कोई कमी रह गई है।' शहजादी की बात सुनकर शत्रुसाल हक्के-बक्के रह गए। उन्होंने कहा, 'नहीं... नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।' शहजादी ने फिर शरारत से आंखे नचाते हुए कहा, 'राजा साहब आप घबरा क्यों रहे हैं?' 'घबराने जैसी कोई बात तो नहीं लेकिन अगर बादशाह को यह पता चल गया तो उन्हें नागवार गुजरेगा। मुझे अपनी चिंता नहीं, लेकिन आपकी इज्जत पर कोई उंगली उठाए, मुझे बर्दाश्त नहीं। आप तो जानती ही हैं कि आपके छोटे भाई औरंगजेब और शहजादी रौशनआरा हमारे मिलन को बर्दाश्त नहीं कर सकते। हमारा मिलन मुगलिया शान बर्दाश्त नहीं कर पाएगा।' अचानक शहजादी ने शत्रुसाल का हाथ पकड़ लिया और कहा कि आप अपनी अहमियत समझिए, आप किसी के नौकर नहीं, बादशाह के आप मनसबदार हैं। क्या आपको बताना होगा कि मनसबदार क्या होता है। शहजादी के हाथ पकड़ने से राजा साहब का पूरा बदन कांप उठा, वह सिहर कर रह गए। थोड़ी देर के बाद जहांआरा ने फिर कहना शुरू किया, 'राजा साहब, आपके बगैर हम नहीं जी सकते। अगर आप बुरा न मानें तो मैं अब्बा हुजूर से कहकर आपको आगरा बुलवा लेती हूं। फिर हमारे मिलने-जुलने में कोई कठिनाई नहीं होगी।' राजा शत्रुसाल ने कहा कि वह ऐसा कोई काम नहीं करेंगी, जो बादशाह शाहजहां को नागवार गुजरे, वैसे भी हम बादशाह के हुक्म के गुलाम हैं। दोनों के बीच ये बातें हो ही रही थीं कि राजा का इशारा पाकर कोयल अपनी नाव उनकी नाव के पास ले आई। राजा साहब कुछ घबराए से लग रहे थे। कोयल ने शरारत से कहा, 'राजा साहब, अभी मंजिल बहुत दूर है, इस तरह घबराएंगे तो कैसे काम चलेगा।' कोयल ने राजा साहब को यह भी बताया कि शहजादी सच कह रही हैं कि वह आपके बिना नहीं रह पाएंगी, वह आपसे बेपनाह मुहब्बत करती हैं। राजा भी शहजादी को प्यार करने लगे थे लेकिन उनके मन में खटका था कि कहीं इस बात की भनक शाहजहां को लग गई तो आफत आ जाएगी। बादशाह बूंदी की ईंट से ईंट बजा देंगे, सल्तनत तबाह हो जाएगी। यह बात जब उन्होंने कोयल को बताई तो कोयल ने सिर्फ इतना ही कहा, 'राजा साहब, आप तनिक फिक्र न करें। हमारे ऊपर विश्वास कीजिए, कोयल अपनी जान पर खेल जाएगी लेकिन आप दोनों को जुदा नहीं होने देगी।' कोयल की बातों से राजा शत्रुसाल को तसल्ली मिली। कुछ दिनों तक दौलताबाद में रहने के बाद सभी आगरा लौट आए।

आज शहजादी अपने मरहूम परदादा अकबर का मकबरा सिकंदरा की सैर करने निकली। शहर-ए-कोतवाल शहजादी के खास हाथी के साथ चलना चाहता था लेकिन शहजादी जहांआरा ने इसकी इजाजत नहीं दी। आज यह इज्जत खासतौर पर बूंदी के राजा शत्रुसाल को बख्शी गई थी। दोनों बादशाह अकबर की कब्र पर फूल चढ़ाकर बाहर आए। बातचीत में शत्रुसाल जहांआरा को बेगम साहिबा कहकर संबोधित कर रहा था, जो शहजादी को तनिक पसंद नहीं आ रहा था। इसलिए उसने राजा साहब से गुजारिश की कि वह उसे बेगम साहिबा कहकर न पुकारें, सिर्फ जहांआरा कहें। अंत में राजा ने शहजादी को जहांआरा कहकर जैसे ही पुकारा, उसने राजा साहब के दोनों हाथ पकड़ कर चूम लिए। राजा का बदन गनगना कर रह गया। अभी वे बातें कर ही रहे थे कि कोयल वहां दौड़ती हुई आ पहुंची और उन्हें बताया कि कोई जवान दीवार पर चढ़ रहा था, जिसे उसने तीर से घायल कर दिया। इस घटना के बावजूद दोनों काफी देर तक गुफ्तगू करते रहे। सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था। अब वे जब चाहते, मुलाकात कर लेते, लेकिन एक दिन एक दुर्घटना हो गई। जहांआरा वसंतोत्सव का गान सुन रही थी कि बादशाह शाहजहां ने उसे बुला भेजा। वह तेजी से अपने अब्बा हुजूर के महल की ओर चल पड़ी लेकिन गलियों में जल रही मोमबत्तियों की लौ से उसका इत्र में सराबोर दुपट्टा छू गया और उसमें आग लग गई। आग इतनी तेजी से फैली कि जब तक बुझायी गई, तब तक जहांआरा का बदन काफी जल चुका था। शहजादी के जलने की खबर जंगल में आग की तरह फैल गई और सभी उसे देखने के लिए आने लगे।

बूंदी के राजा शत्रुसाल भी बादशाह शाहजहां की इजाजत

पाकर शहजादी जहांआरा को देखने आए। अपनी जांनशीं की हालत देखकर वह अपने आंसू नहीं रोक पाए। किले से वापस होने के बाद शत्रुसाल कई दिनों तक अपनी हवेली से बाहर नहीं निकले। वह बाहर तभी निकले, जब उन्हें पता चला कि जोधपुर के राजा जसवंत सिंह की अगुआई में औरंगजेब और मुराद की बागी सेना से लड़ने गई शाही फौज को धरमत के जंग में शिकश्त मिली है। औरंगजेब और मुराद की सम्मिलित फौज का मुकाबला करने के लिए दाराशिकोह की अगुआई में एक बड़ी फौज तैयार की गई। बूंदी के राजा शत्रुसाल मोर्चे पर जाने के पहले जहांआरा से एक बार मुलाकात करना चाहते थे। कोयल के सहयोग से मिलना तय हो गया। शहजादी जहांआरा बड़ी देर से और बड़ी बेसब्री से राजा साहब का इंतजार कर रही थी। वह बार-बार कोयल को खास दरवाजे की ओर दौड़ा रही थी। थोड़ी देर बाद कोयल ने शत्रुसाल के आने की खबर दी। महल में पहुचते ही राजा शहजादी की कदमबोशी के लिए झुक गए, लेकिन उनकी जबान से शहजादी की शान में एक भी लफ्ज नहीं निकला। लग रहा था, जैसे वे किसी खयाल में डूबे हुए हों। अचानक उन्हें इसका इल्म हुआ और अपनी गलती का एहसास भी। वह बोले, 'बेगम शहजादी का इकबाल बुलंद हो। जब तक शत्रुसाल के हाथों में तलवार है, तब तक शहजादे औरंगजेब और मुरादबख्श वलीअहद शहजादे दाराशिकोह का बाल भी बांका नहीं कर सकते।' इतना सुनते ही शहजादी की आंखों से अश्रुधारा बह निकली। राजा बोले, 'बेगम शहजादी, यह कमजोरी कैसी, मुगल शहजादियां और बेगमें तो शहजादों और बादशाहों को मैदान-ए-जंग में मुस्करा कर भेजती रही हैं, फिर आपकी आंखों में आंसू क्यों।' शहजादी ने कातर स्वर में कहा, 'राजा साहब, पता नहीं, अब कब मुलाकात होगी... कौन जाने होगी भी कि नहीं। इसलिए एक बार, सिर्फ एक बार मुझे जहांआरा कहकर पुकारिए, हमारी और कोई तमन्ना नहीं है।' राजा साहब की चुप्पी देखकर उसने कहा, 'राजा साहब, मैं आपसे कोई ऐसी चीज नहीं मांग रही, जो आप हमें दे न सकें। क्या विदाई के वक्त हमारी ख्वाहिश पूरी नहीं करेंगे।' राजा शत्रुसाल ने जैसे ही शहजादी को जहांआरा कहकर पुकारा, खुशी के मारे वह एक साथ मुस्कराने और रोने लगी। फिर संयत होकर उसने राजा शत्रुसाल के माथे पर रोली-चंदन का टीका लगाया और उस पर चावल के कुछ दाने भी टांक दिए। इसके बाद वह राजपूत रानियों की तरह शत्रुसाल के पैरों की ओर झुकने लगी। अनायास राजा साहब ने उसे अपनी मजबूत बाहों में भर लिया और शहजादी राजा के फौलादी सीने से चिपट गई। वर्षों की हसरत पूरी हुई... जिंदगी की साध मिट गई। जब राजा साहब ने कहा कि उन्हें अब जाना होगा तो, शहजादी ने अपने कांपते हाथों से जड़ाऊ तलवार उनके हाथों में सौंपते हुए कहा, 'राजा साहब, अल्लाह से मेरी दुआ है कि मैदान-ए-जंग में आपको फतह नसीब हो।' शहजादी से विदा लेकर जैसे राजा साहब बाहर निकले कि कोयल आती दिखाई दी। चलते-चलते ही राजा साहब ने कोयल से कहा, 'कोयल, बेगम शहजादी का खयाल रखना।' शत्रुसाल के वहां से जाते ही जहांआरा अपने पलंग पर धड़ाम से गिर पड़ी... आंखों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी।

जब वलीअहद शहजादे दाराशिकोह को अपने जासूस से खबर मिली तो, उसने तुरंत खलीलुल्लाह खान की अगुआई में सामूगढ़ के लिए फौज को रवाना करने का हुक्म दे दिया। इस युद्ध में बूंदी के राजा शत्रुसाल को हरावल दस्ते का कमान सौंपा गया। जैसे ही शाही सेना का बायां बाजू फिरोज जंग की कमान में हरकत में आया, बूंदी नरेश शत्रुसाल अपने हिरावल दस्ते को लेकर मुरादबख्श की फौज पर टूट पड़े। भयानक जंग हुई। राजा शत्रुसाल ने दुश्मन फौज के छक्के छुड़ाकर रख दिए। लेकिन अंत में दुश्मनों की फौज ने उन्हें चारों तरफ से घेर लिया। जबर्दस्त लड़ाई होने लगी। लड़ते-लड़ते उनका पूरा शरीर लहूलुहान हो गया, जिरह-बख्तर फट गए लेकिन इसके बावजूद शत्रुसाल दुश्मन के वश में नहीं आ रहा था। अंत में आजम खां नामक एक फौजी ने राजा की पीठ में जोर का भाला मार दिया। लेकिन वाह रे वीर... इसके बावजूद वह लड़ रहा था लेकिन यह देर तक चलने वाला नहीं था। जब राजा ने देखा कि उनका अंत करीब है तो अपने एक विश्वस्त सिपाही को जुबानी संदेश दिया, 'बेगम साहिबा शहजादी जहांआरा से कहना कि हमने पीठ नहीं दिखाई।' इतना कहकर वह अपने घोड़े से गिर पड़े। कायर आजम खां ने उनका सिर काट लिया।

जब जहांआरा को शत्रुसाल के सामूगढ़ की जंग में लड़ते हुए मारे जाने की खबर मिली, तो कहते हैं कि उसे इतना गम हुआ कि वह नमाज पढ़ना भूल गई। इतना ही नहीं, वह इतनी जोर से रोई कि उसकी आवाज़ किले के बाहर तक गूंजने लगी। सभी सकते में आ गए। खुद बादशाह शाहजहां अपनी बेटी का रुदन सुनकर उसके महल में आ गए। कहा जाता है कि उस दिन के बाद जहांआरा ने कोई जेवर नहीं पहना और अपनी सारी कीमती पोशाक गरीबों में तक्सीम कर दीं। उसने अपने अब्बा हुजूर से सिर्फ इतना ही कहा, 'सामूगढ़ की जंग होने से पहले ही मैं मर गई होती तो अच्छा होता।' बादशाह शाहजहां अपनी बेटी का दर्द जानते थे लेकिन उन्होंने चुप रहना ही मुनासिब समझा। अब जहांआरा अगर ज़िंदा थी तो सिर्फ अपने अब्बा हुजूर के लिए, क्योंकि औरंगजेब ने उन्हें कैद में डाल दिया, जहां उनकी सेवा के लिए किसी को नहीं तैनात किया गया था। शत्रुसाल की यादों में ही शहजादी की ज़िंदगी गुजर गई। जहांआरा को मुहब्बत तो नसीब हुई लेकिन मंजिल को तरसती रही।

कुंभ में सफाईकर्मियों ने उल्टे झाड़ू

■ राकेश कुमार सिंह

नागा संन्यासियों के अखाड़े बेशक बनारस रवाना हो चुके हों, कल्प वासियों ने लौटना शुरू कर दिया हो, नामी-गिरामी बाबाओं के पंडालों में से भीड़ सरकने लगी हो, परन्तु शिवरात्रि का अति महत्वपूर्ण स्नान अभी बाकी है। मेले में आए तमाम छोटे-बड़े कारोबारी अभी रहेंगे। फक्कड़-घुमक्कड़ तो मेला समाप्ति होने तक आते-जाते रहेंगे। प्रशासनिक अमले पर तो मेला संपन्न करवाने की जिम्मेदारी है, लिहाजा उन्हें तो रहना ही है। कभी-कभी डैप्युटेशन पर तैनाती भी बहुत सुहाता है। कुछ अतिरिक्त पर्क्स वगैरह तो मिल ही जाते हैं। परन्तु एक बड़ा तबका बहुत कम आमद और स्वार्थ के बावजूद मेले से लौटने वालों की आखिरी जमात में शामिल होगा। सफाईकर्मियों का। मेले की स्वच्छता और साफ-सफाई की जिम्मेदारी संभाल रहे तकरीबन छह हजार मजदूर तमाम कड़वे-घिनौने अनुभवों के बावजूद पूरी शिद्दत से मेले को अर्थ प्रदान कर रहे हैं। बीती 23 जनवरी को उस वक्त इन सफाईकर्मियों की अहमियत का अंदाजा मेलार्थियों को लग गया जब चंद घंटों के लिए इन्होंने अपने झाड़ू उलट दिए।

'मैं तो अपनी बुआ के कहने पर यहां काम करने आ गया। लेकिन, हमें जो सुविधा दी गई है उससे अच्छी सुविधा तो हम अपने जानवरों को देते हैं। कैसे रह लेते हैं हमारे भाई लोग यहां!'

-जूना अखाड़े के पास झाड़ू लगाने वाले सोनू

उस कड़ाके की ठंड में जब दांत भी किटकिटाने से इंकार कर देते हैं, सफाईकर्मी अपना काम करते रहे। उन्हीं फटे-पुराने कपड़ों में, जिन्हें आप और हम उपयोग के लायक नहीं समझते हैं। गर्म तो कतई नहीं। अखाड़ों से लेकर, पंडालों, दफ्तरों, घाटों और सड़कों तक, धोते-पोछते रहे मल-मूत्र तीर्थयात्रियों द्वारा प्रवाहित किए जाने वाले फूल-पत्तियों को छान-छान कर बाहर करते रहे, इस ज़िद में कि गंगा प्रदूषणमुक्त हो पाए। ठिकाने लगाते रहे मरे हुए इंसानों व पशुओं को। पुण्य कमाने आए तीर्थयात्रियों और संन्यासियों ने कभी इन मजदूरों की अहमियत का अहसास किया या नहीं, नहीं मालूम। मीडिया ने भी नहीं ही किया। दुनिया भर से आए ज्यादातर कैमरे नागा संन्यासियों को विभिन्न मुद्राओं में कैद करने में जुटे रहे। या फिर पेश करते रहे विदेशी मादा सैलानियों और संन्यासिनों को। समय मिला तो यदा-कदा त्रिवेणी में जलक्रीड़ा करते साइबेरियाई पक्षियों को दिखला कर अपने कर्म का इतिश्री कर लिया। प्रशासनिक अमला भी निरपेक्ष नहीं रह पाया इन मजदूरों के प्रति। यह बात सफाईकर्मियों के हड़ताल वाले दिन और साफ हो गई जब स्वास्थ्य विभाग के एक शीर्ष अधिकारी ने उनकी परेशानियों पर बात करने के बजाय उन्हें गोल-मोल जवाब देकर फुसलाने की कोशिश की। दलाल और बिचौलिए किस्म के लोगों को मजदूरों के हितैषी और नेता के तौर पर पेश करने की कोशिश की। लेकिन मजदूरों की एकजुटता ने यह साबित कर दिया कि वे अब और किसी दलाल या बिचौलिये के फेर में नहीं पड़ने वाले हैं। उन्होंने तत्क्षण न केवल सफाई कर्मचारी लिखी टोपियों को डॉक्टर महोदय की ओर फेंकना शुरू किया, बल्कि चीख-चीख कर यह बताया भी कि उन्हें किसी सधे-सधाए नेता की ज़रूरत नहीं है।

ज्ञात हो कि नजदीकी कौशांबी, बाराबांकी, सुल्तानपुर, फतेहपुर, गोंडा, बांदा, रीवा, सतना, चित्रकुट के अलावा बुलन्दशहर, मेरठ, हापुड़, मुरादाबाद, गाजियाबाद, चंडीगढ, जैसे दूर-दराज के जिलों से तकरीबन दस हजार मजदूर मेले में आए हैं। पहली खेप तो बीते विजयादशमी की शाम ही रावण जलाकर रेल-बस पर सवार हो गई थी। परिवार के लोग भी साथ आ गए। मां के स्तन से चिपके बच्चे भी। चार दिन से चार हफ्ते तक इंतजार के बाद सबको काम मिला गया।

मजदूरों ने काम समझने और रिहाइश जमाने का

काम एक साथ किया। 'गैंग' कहे जाने वाले प्रति बारह मजदूरों के समूह को छोटे-छोटे तंबू दिए गए। 'लल्लू जी एंड संस' द्वारा आपूर्ति किए गए ये तंबू इतने छोटे हैं कि कई मर्तबा सामान्यः कद-काठी के लोगों के भी पांव बाहर झांकने लगते हैं। फिर भी समूचा परिवार इन आशियानों में गुजारा कर रहा है। हालांकि, बहुत से लोग इस मामले में दुर्भाग्यशाली निकले। बाद में आए सैकड़ों मजदूरों को मजबूरन मेला क्षेत्र और आस-पास की सड़कों, फुटपाथों और पुल के आस-पास ठिकाना बनाना पड़ा। सपरिवार एक ही प्लास्टिक में समाकर इनकी 'पूस की रात' गुजरी। माघ भी गुजर रहा है। फिर भी अपनी निष्ठा और मेहनत के बल पर इन्होंने मेले की व्यवस्था को थामे रखा।

विडंबना ही तो है कि अखाड़ों और पंडालों को रमणीयता प्रदान करने वाले तथा यात्रियों को घूमते-फिरते कहीं भी नाक पर उंगली रखे बगैर लघु और दीर्घ शंका निबटान का अवसर उपलब्ध करवाने वाले सफाईकर्मियों को शौच के लिए काफी देर तक कतार में खड़ा होना पड़ता है। स्नान के लिए भी कमोबेश इसी स्थिति से गुजरना पड़ रहा है। जूना अखाड़े के पास झाड़ू लगाने वाले सोनू कहते हैं, 'मैं तो अपनी बुआ के कहने पर यहां काम करने आ गया। लेकिन, हमें जो सुविधा दी गई है उससे अच्छी सुविधा तो हम अपने जानवरों को देते हैं। कैसे रह लेते हैं हमारे भाई लोग यहां!' साथ खड़े कुलदीप कहते हैं, 'ऊपर से पुलिस की घुड़की और बिना वजह की पिटाई भी हमी को मिलती है साहब। पुलिस कहती है कि हम सफाईकर्मी नहीं लगते हैं। सफाई कर्मचारी का मतलब ये तो नहीं है कि हम साफ कपड़ा न पहने, ढंग से न रहें और बिना बात के सबका डांट-गाली खाएं...'

कड़ाके की ठंड में काम करते हुए श्रमिकों के पांवों में न जूते थे, न हाथों में दस्ताने, न नाक पर मास्क। फिर भी वे काम करते रहे। इस उम्मीद से कि दो पैसे बचाकर गांव ले जाएंगे। थोड़ी सहूलियत हो जाएगी। हालांकि, एक श्रमिक के मुताबिक 'अगर घर से राशन लेकर न आए होते तो हम लोग भूखे मर जाते, चाहे घर वापस चले गए होते'। दिसंबर महीने की तय 156 रुपये रोज की दर वाला पगार मजदूरों को 15 जनवरी के आस-पास दिया गया था। उसमें से भी बिचौलियों ने पहले अपना कमिशन निकाल लिया। दिसंबर में ही पगार व जूते, दस्ताने, साबून, गर्म कपड़े, मास्क जैसे कार्य संबंधी अन्ये सुविधाओं की मांग को लेकर 'शहरी गरीब संघर्ष मोर्चा' और 'सफाई कर्मचारी संघर्ष समिति, इलाहाबाद ने मेला प्रशासन को एक ज्ञापन सौंपा था। परिणामस्वरूप पगार बढ़ाकर 197 रुपए रोज करने की बात बताई गई थी। परन्तु अन्य ज़रूरी सुविधाओं के मामले में प्रशासन खामोश ही रहा। आखिरकार, मजदूरों के सब्र का बांध टूट गया और वह हो गया जो कुंभ के इतिहास में कभी नहीं हुआ। 23 जनवरी को सुबह-सुबह मजदूरों ने कंधे पर झाडू तो उठाया पर वे काम पर नहीं गए. जमा हो गए प्रशासन पंडाल में। करते रहे नारेबाजी। मांगते रहे अपना हक। इतनी जल्दी कभी किसी आंदोलन को जीत में तब्दील होते न देखा, न सुना। पूरा प्रशासनिक अमला पंडाल के मंच पर कतारबद्ध खड़ा हो गया। दिनेश, हीरालाल, अंशु मालवीय, जितेन्द्र, प्रभा समेत मजदूरों के तमाम अगुआ मंच पर समझौता करते रहे। बाद में एक प्रतिनिधिमंडल और मेला प्रशासन के बीच समझौता पत्र पर दस्तखत हुआ। अंततः सफाईकर्मियों की 15 मांगों में 13 तत्काल मान ली गईं।

परन्तु बड़ा सवाल अब भी बना हुआ है। वो ये कि मजदूर चाहते हैं कि उनको किसी दलाल या बिचौलिए के माध्यम से नहीं बल्कि सीधे काम दिया जाए। प्रशासन अब तक इस पर अपनी राय साफ नहीं कर पाया है। इस बीच, सफाईकर्मियों की रोजमर्रा को सुंदर बनाने और उनके रोज-ब-रोज के संघर्षों में शामिल कार्यकर्ताओं को जान से मारने की धमकियां मिलने लगी हैं। बीते सप्ताह ही दिनेश नामक एक कार्यकर्ता, जो स्वयं सफाईकर्मियों की जमात से ताल्लुक रखते हैं, को एक बिचौलिए की ओर से फोन पर जान से मार देने की धमकी दी गई। जिसकी शिकायत उन्होंने मेला प्रशासन समेत सभी संबंधित विभागों से कर दी है। डर तो फिर भी बना ही हुआ है। यही वक्त है जब मेला प्रशासन बिचौलियों को उनकी वास्तविक स्थिति का अहसास करा कर अपनी निर्णायक भूमिका अदा कर सकता है। अन्यथा सवाल तो उठेंगे ही कि प्रशासन को बिचौलियों से इतना प्रेम क्यों? सफाईकर्मियों का क्या, वे तो शिवरात्रि के महास्नान वाले दिन एक बार और झाडू उलट सकते हैं।

बघेलखंड का श्रेष्ठतम प्रेम गीत टप्पा

मोहे छैला बोलावे नजरियन मा

■ बाबूलाल दाहिया

बघेलखंड में गाया जाने वाला टप्पा गीत यूं तो एक श्रमिक गीत है, जिसे खेतों, खदानों, ट्रैक्टर, ठेला आदि में काम करने वाले महिला-पुरुष श्रमिकों द्वारा अपने श्रम की दुरूहता को हल्का बनाने के लिए जवाब-सवाल के रूप में गाया जाता है। पर दो पंक्तियों के अनुशासन में बंधे इस गीत की अगर मारक क्षमता को देखा जाए तो इसके ताने-बाने में वही कशिश, वही शब्द शक्ति देखने को मिलती है, जो उर्दू के शेर या हिन्दी मुक्तक, दोहों में। अपढ़ श्रमिकों की रचना होने के कारण वाचिक परंपरा के इस गीत में विद्वानों का ध्यान अभी नहीं गया, पर युवा मन की सशक्त अभिव्यक्ति रूपी इस गीत को अगर दुनिया के श्रेष्ठतम् प्रेम गीतों की प्रतिस्पर्धा में रखा जाए तो शायद ही बघेलखण्ड का यह टप्पा गीत किसी से कमतर साबित हो।

उपमाओं से भरे इस गीत की पहली पंक्ति अगर समस्या पैदा करती है, तो दूसरी उसका समाधान भी। उदाहरणार्थ-

लट्ठा के धोती किनारी नहि आय।
बिना बोले बताने चिन्हारी नहि आय।।

इस गीत को टप्पा की संज्ञा शायद बादलों से टिपटिप की आवाज़ों के साथ टपक रहे उन बूंदों के आधार पर दी गयी होगी जो देखने में भले ही छोटे हैं पर सब की अलग-अलग ध्वनि है और अस्तित्व भी।

बघेली शब्द कोष में एक शब्द 'टपार' भी आता है। टपार का अर्थ बिरल-बिरल बोये गये अनाज के पेड़ों में प्रयुक्त होता है। कमोबेश यही अंतराल टप्पा के हर गीत के बीच दूसरे गीत के गाये जाने के पहले होता है। हो सकता है यह ही इसके टप्पा नाम का कारण बना हो।

वैसे अपढ़ श्रमिकों द्वारा सवाल-जवाब में गाये जाने वाले इस गीत को तथाकथित सभ्य समाज अश्लील की संज्ञा देकर इससे नाक भौं सकेलने लगता है। पर रेडियो, टी.वी. में आज जिस प्रकार लपटा-झपटी और प्रेम प्रसंगों के दृश्य फिलमाये जाते हैं या प्रेम प्रसंगों के गीत गाये जाते हैं, उस मापदंड में टप्पा गीत को अश्लील समझना उचित प्रतीत नहीं होता। फिर टप्पा गीत का गायक वह श्रमिक समुदाय है जिसकी संस्कृति में आज भी मातृ सत्तात्मक समाज के तत्व मौजूद हैं और स्त्री पुरुषों के बीच असमानता की वह गहरी खाई भी नहीं है जितनी अन्य समुदायों में है। अगर पति पहली पत्नी के रहते दूसरी पत्नी रख सकता है तो पत्नी को भी सामाजिक अधिकार प्राप्त है कि वह अपने निठल्ले अकर्मण्य पति को विधि का लेख समझने के बजाय दूसरा पति चुन ले।

इस लेख में जवाब-सवाल की कुछ बानगी प्रस्तुत है। संदर्भ है क्षेत्र में पड़े भयंकर सूखे के कारण पलायन कर रहे कुछ श्रमिक परिवारों का। जो काम की तलाश में जंगल के रास्ते कटनी जबलपुर की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। इस पलायन को सतना जिले की आंचलिक बोली में 'दक्खिन कमाने जाना' कहा जाता था। श्रमिक काम की तलाश में दक्षिण ही क्यों जाते हैं? इसके पीछे भी एक तर्क है। दक्षिण भारत का समाशीतोष्ण मौसम, जिसमें अधिक कपड़ों की आवश्यकता नहीं पड़ती। पलायन कर रहे दल के इन युवक-युवतियों का जवाबी टप्पा देखें।

युवक- मूंड़े गठरिया हाथे म झोरा,
कहां जाती रजनिया चुनूक ब्यारा।।
युवती- कच्चा करउंदा करू लागै,
मोर लइले गठरिया गरू लागै।।

युवक उसकी मदद करता कुछ सामान उठा लेता है, और गीत जारी रहता है। बीच-बीच में वे रोटियां भी निकाल कर खाते जाते हैं।

युवक- बरखा न पानी झुराइ गई धान।
चला उड़ चली चिरई कोइलिया खदान।।
युवती- गोहूं के रोटी उपर चटनी।
छैला तोही घुमइहौं शहर कटनी।।
युवक- गोहूं के रोटी गोजहरा कै।
मन लइगै बिटीवा उचेहरा कै।।
युवती- डोभरी कै लासी गली म चुचुआय।
तोरे घर के बियाही गली म लुलुआय।।
युवक- खैरा के खाये सुपारी बिसरै।
तोर देखे सुरतिया बियाही बिसरै।।
युवती- आरी लगइहे दुइन दिन का।
बदलामी बेसहिहे सबै दिन का।।
युवक- आंमा कै लउंची झूले म टूटै।
मोर तोसे पिरितिया मरे न छूटै।।
युवती- पाटी तो पारे बनाये चेहरा।
घर रोई बियाही मनुष मेहरा।।
युवक-आमां के पत्ता बनाऊ चोंगी।
तोरे लाने रजनिया बनौं मैं जोगी।।

युवती-आमां के पेड़ पटक तरूआ।
मोरे माथे तैं रहिहें जलम रडुआ।।
युवक- आमां लगइहों अमिलपुर मा।
तोसे शादी करइहौं जबलपुर मा।।
युवती- आसौं के धान म चउर नहि आय।
अबै कहां कहां जइहे ठउर नहि आय।।
युवक-लाली लाली बंडी म म्हुली गुदाम।
तोरी तिरछी नजरिया त कीन्हे गुलाम।।

पलायन दल को सुदूर दक्षिण नहीं जाना पड़ता। उसे कटनी के चूना उद्योग में ही काम मिल जाता है। वह वहीं झुग्गी झोंपड़ी बनाकर रहने लगता है। आगे के टप्पा गीत देखें।

युवक-फोर फोर पथरा लगाऊं चट्टा।
चोरी चोरी भेजाय दे बीड़ी क कट्टा।।
युवती-नदिया कछारे परी है सूती।
आज डाला भरी न तोंहारे बूती।।
युवक-कच्ची सुपारी कटत नहि आय।
प्यारी तोरी जमानी भुलत नहीं आय।।
युवती- चांदी के छल्ला धरा है अरका।
ठेला नरबा म ठाढ़ो आये तै तलबा।।
युवक- गोड़े म तोरे बजैं पइरी।
बिना देखे न मानैं नयन बइरी।।
युवती- लम्मी सड़किया म गोला बाजार।
मोही लइदे मुदरिया छिंगुरिया के तार।।
युवक- गइंती कुदारी गहन धइ देव।
तोर यारी न छांड़ौ मुलुक तज देव।।

जिस प्रकार फिल्मों में प्रेमी-प्रेमिका के बीच खलनायक का प्रवेश हो जाता है उसी प्रकार श्रमिकों से काम ले रहे ठेकेदार या मुंशी भी युवक-युवतियों के जवाब-सवाल में खलनायक की तरह शामिल हो जाते हैं। पर उनके गीतों में भी संपन्नता की ठसक और पैसे का दर्प रहता है। उन्हें शायद यह पता नहीं कि प्रेम पैसे से नहीं खरीदा जा सकता। उदाहरणार्थ-

ठेकेदार-तामें क पइसा बुढ़ीबन का।
अंगरेली रुपइया बिटीवन का।।
श्रमिक-अमली के पेंड़े पटक तरुआ।
तोही अइसै बदा है जलम रडुआ।।
ठेकेदार- पान खाय ले मुन्नी खैर नहि आय।
चुन बोलिउ बताय ले बयर नहि आय।।
श्रमिक-छिउला के पत्ता बनाथी दोनिया।
तोरे जइसा फिरत हैं बहुत गुनिया।।

कटनी में काम करते कई महीने गुजर जाते हैं। अब वह युवक काम में जाने के लिए एक पुरानी साइकिल खरीद लेता है। और रास्ते में भेंट होने पर कभी-कभी अपनी प्रेयसी को भी बिठा लेता है। आगे के गीत देखें।

युवती-गाड़ी तो भागे पटरियन मा।
मोही छैला बोलावें नजरियन मा।।
युवक- गदिया तमाखू चिहुटी भर चून।
तोही यतना मैं मनेव बियाहि उसे दून।।
युवती- सइकिल से आना सइकिल से जाना।
दगाबाजी किन्हे गली म थाना।।
युवक- सम्पत भोग्यव बियत भोगिहौं।
तोरे जियरा के लाने पहल भोगि हौं।।
युवती- पानी के बरखे सीमेंट ग ही धूर।
मन माया फंसाय के चले जइहे दूर।।
युवक- पानी के बरखे ओढ़ाऊ खोम्हरी।
चुनू आमैं दे फागुन डराऊं भमरी।।
युवती- छिउला क पत्ता झिंझिरिहा देखांय।
छैला काहे दुबराने पसुरियां देखाय।।
युवक- खाले है धरती उपर असमान।
जो तै शादी न करिहे ता छोड़ौ परान।।

लोकगीतों का हमेशा चरित्र रहा है कि आम आदमी जिस तरह की ज़िंदगी जीता है वही गीतों की विषयवस्तु होती है। सतना जिले में जब जोर-शोर के साथ साक्षरता अभियान चला तो वह टप्पा गीतों से भी अछूता नहीं रह सका था। यथा-

युवती- मइके क अपने लिखौं चिठिया।
मोही हरबी तैं अक्षर चिन्हाव बिटिया।।
युवक-पढ़के गढ़इहे कउन लोरिया।
बुदबा टिकुली लेहे कि लेहे डोरिया।।
युवती- अक्षर से जेखर चिन्हारी नहि आय।
आज दुनिया म ओसे अनारी नहि आय।।

कभी-कभी घर में हुए विवाद का असर सारे दिन बना रहता है जिसका प्रभाव टप्पा गीतों में भी देखा जा सकता है।

युवक-मछरी के धोखे लयाईं गुलरी।
सतना बाली बिटिया बड़ी लेल्हरी।।
युवती-हम नहि गाई काहू क जोर के।
कउनौ छैला न गाबै हमू क जोर के।।
युवक- नदिया के तोरे पर है झलुआ।
तोही जब देखै रहती फुलोय गलुआ।।

इस तरह इन टप्पा गीतों में युवा मन के आपसी प्रेम-प्रलाप एक दूसरे के ऊपर व्यंग्य, कटाक्ष, बैर, तकरार फिर मेल-मिलाप आदि तमाम मनोभावों को एक साथ देखा जा सकता है। बघेलखंड की वाचिक परंपरा की यह विधा बदलते परिवेश में कहीं विलुप्तता के गहरे गर्द में न चली जाए। इसलिए ज़रूरत है इस प्रेम गीत के अनुशीलन और प्रलेखीकरण की।

मैंने लोक विधा के कुछ ही गीतों को उदाहरणार्थ इस लेख में कोट किया है पर सारे दिन अनवरत गाये जाने वाले इस गीत का लोकरंग में अक्षय भंडार है।

लेखक- बघेली लोककला व संस्कृति के मर्मज्ञ हैं।

भारत की लोकचित्र परंपराएं

■ सरिता चौहान

...पिछले अंक से जारी

राजस्थान में लोकचित्र परंपरा : राजस्थान का प्रत्येक कला रूप अपने आप में अनूठा है। राजस्थान में लोक चित्रकारी की एक समृद्ध परंपरा रही है। राजस्थान की बंजर और सूखी ज़मीन पर लोक कलाकारों ने चमकीले और गहरे रंगों के साथ अपनी एक अलग ही दुनिया रची है। यहां की औरतें दीवारों और फर्श पर चित्र बनाती हैं। इन चित्रों में आमतौर पर यहां के रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों से जुड़े प्रतीक चित्रित किए जाते हैं। मेवाड़ और मालवा इलाके में *संझ्या* पेंटिंग बनाई जाती हैं। ये पेंटिंग पितृपक्ष के दौरान लगातार 14-15 दिनों तक बनाई जाती हैं और उन्हें केवल नवविवाहित लड़कियां ही बनाती हैं। पितृपक्ष के दौरान हिंदू परिवार अपने पुरखों को याद करते हैं और उन्हें चढ़ावा चढ़ाते हैं। पिछवाई या मंदिरों में लगाई जाने वाली लटकनें कपड़े पर बारीक कलाकारी के लिए जानी जाती हैं।

स्थानीय कुम्हार घर की दीवारों पर भित्ति चित्र बनाते हैं। राजस्थान के कुछ इलाकों उदयपुर, बीकानेर, बूंदी और कोटा में यह कला काफी विकसित रूप में दिखाई देती है। एक दिलचस्प बात यह है कि राजस्थान के कई शाही घरानों और दरबारों में चित्रकारी की अलग-अलग धाराएं विकसित हुई हैं। इसके लिए दरबार की तरफ से इलाके के प्रमुख लोक कलाकारों को शाही प्रश्रय दिया जाता था। बाद में मुगल दरबार और समाज के प्रतिष्ठित लोग भी इन कलाकारों को संरक्षण देने लगे।

राजस्थान की कला राजसी, युद्धक एवं शौर्य परंपरा से जन्मी है। इस परंपरा का एक चाक्षुक विवरण देने वाली फड़ चित्रकारी यहां काफी प्रचलित है। इस शैली के चित्र बहुत लंबे होते हैं और उन्हें छड़ों या डंडों पर लपेट कर रखा जाता है।

राजस्थान की फड़ चित्रकला

राजस्थान के लोक कलाकारों ने अपने चमकीले रंगों और कूची के गहरे स्ट्रोक्स से महाकाव्यों की आभा अपने चित्रों में उकेरी है। उन्होंने कपड़े की लंबी-लंबी पेंटिंग्स पर अपने स्थानीय नायकों और नेताओं के जीवन को बड़े सजीव ढंग से चित्रित किया है। इन चित्रों की लंबाई के कारण उन्हें लपेट कर ही रखा जाता है।

शाहपुरा, भीलवाड़ा और रायपुर फड़ चित्रकला का केंद्र रहे हैं। ये भीलवाड़ा जिले में आते हैं। इनके अलावा चित्तौड़गढ़ इलाके के कुछ स्थानों पर भी फड़ चित्रकला काफी प्रचलित है।

इन चित्रों में स्थानीय जनश्रुतियां चित्रित की जाती हैं। अलग-अलग नायकों की तस्वीरों और उनसे जुड़ी घटनाओं के चित्रों के सहारे यहां के कथावाचक कलाकार अपनी कहानियों के लिए एक रंग-बिरंगी पृष्ठभूमि तैयार कर देते हैं।

इन चित्रों में अलग-अलग घटनाओं को क्रमबद्ध ढंग से चित्रित किया जाता है। ये चित्र शाम ढलने के बाद खोले जाते हैं क्योंकि यहां कथावाचन का आयोजन रात में ही किया जाता है। राजस्थानी बोली में 'पर' का मतलब होता है तह और इन चित्रों को तह करके या लपेट कर ही रखा जाता है। कहानी शुरू होने से पहले कथावाचक और उसके सहयोगी नायक देवताओं की तस्वीरों की पूजा करते हैं। नायक देवताओं की तस्वीर इन चित्रों के बीचों-बीच बनाई जाती है।

कहानियां सुनाने वाले व्यक्ति को *भोपा* कहा जाता है। उसे यहां के लोग एक पुजारी की तरह मानते हैं। वह गांव-गांव जाकर नाचते-गाते हुए स्थानीय नायकों का जीवनवृत्त लोगों को सुनाता है। जिस समय *भोपा* कहानी सुना रहा होता है उस समय उसकी पत्नी फड़ पर उजाला करने के लिए दीया लेकर खड़ी रहती है। यह प्रदर्शन केवल मनोरंजन का साधन नहीं है। इसमें कथावाचक एक पुजारी की हैसियत रखता है और इन चित्रों की बाकायदा पूजा की जाती है।

इन चित्रों में राजस्थान के जनश्रुति नायक *पाबूजी* और *देव नारायणजी* के जीवन का विवरण दिया जाता है। *देव नारायणजी* को लोग *देवजी* कहकर पुकारते हैं। यहां के लोगों का मानना है कि *पाबूजी* के पास बीमार ऊंटों का इलाज करने और मवेशियों की रक्षा करने की जादुई शक्ति होती है। इन पशुओं से संबंधित जातियों के लोग महर, झाट और भट्ट पाबूजी की पूजा करते हैं। कथावाचक *पाबूजी* के गुणों का बखान करता है और उनके जन्म से लेकर शत्रु समुदाय के हाथों उनकी मृत्यु तक के सफर का पूरा विवरण देता है। कहानी का अंत इस तथ्य के साथ होता है कि *पाबूजी* के भतीजे ने अंततः अपने चाचा की मौत का बदला ले लिया। इसी तरह की कहानी *देवजी* के बारे में भी सुनाई जाती है।

देवनारायण फड़ काले नाग से पहचानी जाती है क्योंकि माना जाता है कि *देवजी* सांप का ही अवतार थे। दूसरी तरफ *पाबूजी* को दिखाने वाली फड़ में एक काली घोड़ी दिखाई जाती है क्योंकि *पाबूजी* घोड़ी पर बैठ कर ही चलते थे।

ये पेंटिंग जोशी समुदाय के लोग तैयार करते हैं और आमतौर पर *भोपा* ही उन्हें ये चित्र बनाने का काम सौंपते हैं।

चित्र पूरा होने पर कलाकार नायक देवता के शिष्य के रूप में अनुष्ठानपूर्वक इन चित्रों पर अपना हस्ताक्षर करता है। यह हस्ताक्षर चित्र के उस बीच वाले हिस्से में उकेरा जाता है जहां नायक की सबसे बड़ी तस्वीर बनी होती है।

प्रत्येक नायक देवता की कहानी एक अलग *भोपा* सुनाता है। *भोपा* शब्द ऐसे गैर-ब्राह्मण पुजारियों के लिए इस्तेमाल किया जाता है जो अपना सारा जीवन अपने देवता की सेवा में समर्पित कर चुके हैं। *भोपाओं* से उम्मीद की जाती है कि उनमें कम से कम बारह घंटे तक कथा सुनाने और नाचने-गाने की क्षमता होनी चाहिए और उन्हें प्रत्येक तस्वीर का पूरा ज्ञान होना चाहिए।

फड़ चित्रों में *राम* और *कृष्ण* के जीवन का चित्रण भी किया जाता है। इन चित्रों को *रामदला* और *कृष्णदला* कहा जाता है। सभी फड़ों में कुछ समानताएं होती हैं। चित्र चाहे किसी भी नायक देवता का क्यों न हो, फड़ का एक इंच हिस्सा भी खाली नहीं होता। वह एक कोने से दूसरे कोने तक तस्वीरों से भरा रहता है। छोटे पात्रों की तस्वीरें कभी भी मुख्य पात्रों की तस्वीरों को नहीं काटतीं। चित्र में प्रत्येक समूह के पात्रों की एक खास जगह होती है। नायक देवता अपने दरबार के साथ बीचों-बीच बैठता है और उसके परिजनों व परिचितों को उसके दोनों तरफ चित्रित किया जाता है।

इस कला का एक और दिलचस्प पहलू यह है कि इन चित्रों में दिखाए गए पात्रों का रुख दर्शकों की तरफ नहीं होता। वह एक दूसरे को ही देखते हैं। सामने देखती हुई तस्वीरें केवल देवी-देवताओं की ही होती हैं। *पाबूजी* फड़ में इस तरह के कुछ अपवाद दिखाई देते हैं। उनमें कुछ नकारात्मक प्रवृत्ति वाले पात्र दर्शकों की तरफ देखते दर्शाए जाते हैं।

नायक देवताओं की कहानियों के अनगिनत प्रसंगों को समाहित करने के लिए इन पेंटिंगों की लंबाई-चौड़ाई बहुत व्यापक होती है। *पाबूजी* की कहानी के लिए 15-18 फुट चौड़े और 4-5 फुट ऊंचे कैनवास का इस्तेमाल किया जाता है। *देवजी* की फड़ 25-30 फुट लंबी होती है।

इस शैली के चित्रों में कपड़े को तैयार करने की प्रक्रिया भी एक महत्वपूर्ण क्रिया होती है। चित्र बनाने से पहले सूती कपड़े पर मांड़ चढ़ाया जाता है। इसके बाद उस पर उबले हुए जौ के आटे और गोंद का लेप चढ़ाया जाता है। इसके बाद कपड़े को चिकना बनाने के लिए पत्थर से उसे घिसा जाता है। अब यह कपड़ा चित्र बनाने के लिए तैयार हो जाता है। एक किताब के सहारे चित्रकार इस कैनवास पर चित्रों की मोटी रूपरेखा बनाता है। उसके बाद वह उनमें रंग भरना शुरू कर देता है। सबसे पहले पीला रंग भरा जाता है। उसके बाद हरा और सिंदूरी और अंत में नीला रंग भरा जाता है। इसके बाद बाहरी रेखाओं को काला कर दिया जाता है। इन चित्रों के लिए पत्थरों को पीसकर और उनमें नील मिलाकर अलग-अलग रंग बनाए जाते हैं।

माना जाता है कि फड़ में ही संबंधित देवता का वास होता है। इसलिए फटी-पुरानी पेंटिंग्स को नष्ट करने के लिए भी विशेष अनुष्ठान किए जाते हैं। इसके लिए *भोपा* उन्हें पुष्कर स्थित पवित्र झील में जाकर डुबो देते हैं।

आजकल फड़ चित्रों के नए रूप भी मिलने लगे हैं जिन्हें ज़्यादा आसानी से खरीदा-बेचा जा सकता है। यह आकार में बहुत छोटे होते हैं और उन्हें कागज पर बनाया जाता है। समकालीन पारखी कला प्रेमी फड़ चित्रों की विषयवस्तु और शैली में आए इन बदलावों को अच्छा नहीं मानते क्योंकि उनकी राय में इससे इय शैली की मौलिकता खत्म होती जा रही है।

आंध्र प्रदेश की नकाशी चित्रकला

राजस्थान के फड़ चित्रों की तरह आंध्र प्रदेश में भी लपेट कर रखे जाने वाले चित्रों की एक शक्तिशाली परंपरा रही है। इन्हें चेरियल स्क्रॉल पेंटिंग कहा जाता है। इन चित्रों में एक खास समुदाय के उदय और उस समुदाय के देवी-देवताओं, दैत्यों व नायकों की कहानियां चित्रित की जाती है। इन चित्रों में *कृष्ण लीला, रामायण, महाभारत, शिव पुराणम, मार्कंडेय पुराणम* तथा गौड़ा, मदिगा आदि समुदायों के उदय की कहानियां बहुतायत से दर्शायी जाती हैं।

इन चित्रों की लंबाई इस बात पर निर्भर करती है कि कहानी कितनी बड़ी है। महाभारत जैसे महाकाव्य के लिए 20 मीटर तक के चित्र बनाए जाते हैं।

इस शैली के चित्र बनाने वाले कलाकारों को नकाशी कहा जाता है। एक समय उनकी कलाकृतियों की भारी मांग थी। आंध्र प्रदेश के सात समुदायों मदिगा, गौड़, मुदिराजू, मलास, पद्मशाली, चकाला और मंगली के कथावाचक इन चित्रों के सहारे ही कहानी सुनाया करते थे। चित्र बनवाने के लिए कथावाचक ही चित्रकारों को कहानी का ब्यौरा देते थे और अलग-अलग तस्वीरों के रूप-रंग के बारे में बताते थे। बाद में नकाशी कलाकार स्क्रॉल पेंटिंग्स पर अपेक्षानुसार चित्र बना देते थे।

इसके बाद कथावाचक अपनी-अपनी टोलियों के साथ गांव-गांव जाकर कहानियां सुनाते थे। अगर पांच लोगों की टोली होती थी तो उसमें दो लोग कहानी सुनाते थे और बाकी लोग हारमोनियम, तबला और तलस आदि वाद्य यंत्रों के सहारे उनका साथ देते थे। इस शैली में कथावाचन के लिए एक साधारण सा मंच बनाया जाता है जो चार स्तंभों पर खड़ा होता है। मंच पर एक सपाट लट्ठा होता है जिस पर इस पेंटिंग को लटका कर दिखाया जाता है।

मदिगा जाति की उपजाति दक्काली के लिए नकाशी चित्रकार *आदिपुराण* की कथाएं चित्रित करते हैं क्योंकि यह समुदाय

आदिपुराण की कहानियां ही सुनाता है। *आदिपुराण* की कहानियां मदिगा समुदाय के जन्म से संबंधित होती हैं और इसके लिए ताड़पत्र का प्रयोग किया जाता है जिस पर कहानी लिखी होती है। नकाशी इस चित्र के लिए जिस कैनवास का इस्तेमाल करते हैं उस पर पहले चॉक मिट्टी और इमली की पिसी हुई गुठलियों का लेप चढ़ाया जाता है। ऐसा करने पर कपड़ा सख्त हो जाता है। ये चित्र चमकदार लाल रंग की पृष्ठभूमि में बनाए जाते हैं और उनके लिए आमतौर पर पीले, नीले, हरे और सफेद रंगों का इस्तेमाल किया जाता है।

अब लंबे चित्रों को पहले जैसा संरक्षण नहीं मिलता इसलिए बहुत सारी लंबी कहानियों को काटकर छोटा कर दिया गया है। बहुत सारे कलाकार तो मजबूरन इस परंपरा से बाहर ही निकलते जा रहे हैं। अब उनकी कृतियों से लोग अपने घरों को सजाते हैं। क्योंकि उनकी दीवारों पर बड़ी-बड़ी पेंटिंग्स को लटकाने के लिए बहुत जगह नहीं होती इसलिए अब वह छोटे कैनवास पर चित्र बनाते हैं और उसमें किसी कहानी का एकाध चित्र ही होता है।

वह परंपरागत ढंग से रंग तैयार करने की पद्धति भी छोड़ चुके हैं। पहले वह सीपियों से निकाला गया प्राकृतिक सफेद, दीये की कालिख से लिया गया काला और हल्दी से लिया गया पीला रंग इस्तेमाल करते थे मगर अब वह कृत्रिम रंगों का इस्तेमाल करने लगे हैं क्योंकि इनमें मेहनत भी कम लगती है और यह सस्ते भी पड़ते हैं।

अब उनकी कला की मांग गिरती जा रही है इसलिए बहुत सारे नकाशी कलाकार अब दूसरे व्यवसायों से जुड़ गए हैं। आर. वैंकटम पिछले तीन दशकों से इस तरह के चित्र बना रहे हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी कला पर आश्रित रहे परिवार में पैदा हुए नकाशी वेंकटरमैया का परिवार संभवतः एकमात्र ऐसा परिवार है जो अभी भी इस कला को जीवित रखने की कोशिश कर रहा है।

पश्चिम बंगाल के पटवा

बंगाल की लोक संस्कृति स्वीकार्यता और अस्वीकार्यता के तनावों के बीच पैदा हुई है। एक तरफ लोगों ने मंदिर या शाही दरबार के ज़रिए मुख्य संरचना को स्वीकार कर लिया और दूसरी तरफ उन्होंने उसे खारिज भी कर दिया क्योंकि इससे समाज में सामाजिक बिखराव बढ़ रहा था। यहां की लोकचित्र परंपरा में भी हमें ये सारे पहलू दिखाई देते हैं।

पटा पेंटिंग (*पटा चित्र*) बंगाल का एक परंपरागत कला रूप है। इस शैली के चित्रों में धार्मिक और सामाजिक प्रतीकों तथा दृश्यों को चित्रित किया जाता है। पटा बंगला भाषा का शब्द है जो संस्कृत के पट्टा यानी कपड़ा शब्द से निकला है। इस कला शैली का जन्म कहां हुआ इसके बारे में ठीक-ठीक कहना मुश्किल है लेकिन अब यह शैली कोलकाता के कालीघाट में केंद्रित है। बंगाल के कथावाचक लंबे-लंबे पटवा चित्रों की सहायता से कहानियां सुनाते हैं। इस शैली में दर्शकों के सामने एक के बाद एक पट खुलते जाते हैं और कथावाचक कहानी आगे बढ़ाता जाता है।

इन चित्रों में पौराणिक कहानियों या प्रचलित महाकाव्यों की अलग-अलग घटनाओं को दर्शाया जाता है। एक ज़माने में ये चित्र मनोरंजन का एक महत्वपूर्ण साधन रह चुके हैं। बंगाली समाज में कथावाचन की परंपरा इसलिए स्थापित हुई क्योंकि इसके ज़रिए बिना पढ़े-लिखे लोग भी आसानी से कहानी का मजा ले सकते थे और क्योंकि यह कहानी समुदाय के बीचों-बीच सुनाई जाती थी इसलिए लोगों को कथावाचन के बहाने एक-दूसरे के साथ इकट्ठा होने का भी अच्छा मौका मिलता था।

पट चित्रकला शैली को तीन अलग-अलग शैलियों या धाराओं में वर्गीकृत किया जा सकता है। यह वर्गीकरण संबंधित शैली के इलाके पर आधारित है। इन धाराओं को निम्नलिखित नामों से जाना जाता है

1) मिदनापुर
2) बिरभूम
3) मुर्शिदाबाद

इन तीनों धाराओं में एक ही विषय को अलग-अलग अंदाज़ में पेश किया जाता है। इन चित्रों में पौराणिक विषयों का बहुतायत से प्रयोग किया जाता है। चित्रों के लिए पौराणिक कहानियों के कुछ दिलचस्प दृश्य चुने जाते हैं और उन्हें *पाल* नामक चित्र नाटक में दर्शाया जाता है। ये चित्र मुख्य रूप से *रामायण, मनसा-मंगोला* (*शिव, दुर्गा, कृष्ण* आदि के प्रेम की कहानियां) के *पालों* पर केंद्रित होती हैं। रोज-ब-रोज की ज़िंदगी,

प्रकृति और सामाजिक एवं समकालीन चिंताओं को भी इन चित्रों में जगह दी जाती है।

मिदनापुर के पट चित्र

मिदनापुर के पटवा समुदाय के लोगों की धार्मिक पहचान और रीति-रिवाज हिंदू धर्म और इस्लाम, दोनों के बीच पड़ते हैं। उनके समुदाय के जन्म की कहानियों से भी उनके इतिहास का सही-सही पता नहीं चल पाता। पटवा समुदाय के लोग मुसलमान हैं और मुसलमान रीति-रिवाजों का पालन भी करते हैं मगर उनके नाम हिंदुओं के हैं और वह अपने चित्रों में *रामायण, महाभारत, पुराणों* और *मंगल कन्याओं* की कहानियां सुनाते हैं। ये चित्र कपड़े, कैनवास या कागज पर बनाए जाते हैं। वह बहुत सारे हिंदू तीज-त्यौहारों को भी मनाते हैं। उनका कुलनाम *चित्रकार* होता है जिससे उनके व्यवसाय का पता चलता है।

मिदनापुर की स्क्रॉल पेंटिंग तुलनात्मक रूप से कम चौड़ाई वाली होती हैं। वह आमतौर पर 2 फुट से भी कम चौड़ी होती हैं जिससे एक अकेला कलाकार भी उन्हें आसानी से संभाल सकता है। चित्र की शुरुआत किसी महत्वपूर्ण और शक्तिशाली पात्र के साथ होती है। उदाहरण के लिए, रामायण के चित्रों की शुरुआत दशरथ के दरबार से होती है जिसके बाद कई छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन किया जाता है। बीच-बीच में कुछ लैंडस्केप या वास्तुशिल्पीय तत्व भी देखे जा सकते हैं मगर आमतौर पर इन चित्रों के विषय से उनका खास संबंध नहीं होता। इन चित्रों की पृष्ठभूमि लाल या कभी-कभी सफेद होती है। इन चित्रों में पीला, नारंगी, नीला और हरा रंग बहुतायत से इस्तेमाल किया जाता है।

पट चित्रों में चेहरे, कंधों के अग्रभाग और शरीर के अगले हिस्से दिखाए जाते हैं। कई पात्रों की फूली हुई छाती बगल से दिखाई जाती है। इन पात्रों की बाहरी रेखाएं काले रंग की होती हैं और उनके बीच सपाट सफेद रंग भरा होता है।

अब पटवा कलाकार आतंकवादी हमले और लड़कियों की शिक्षा जैसे समकालीन विषयों पर भी चित्र बनाने लगे हैं। आजकल ज़िंदा रहने की जद्दोजहद में उन्होंने साड़ियों और सलवार कमीजों पर चित्र बनाना भी शुरू कर दिया है क्योंकि अब केवल इस कला के सहारे आजीविका अर्जित करना मुश्किल होता जा रहा है।

बिरभूम के पट चित्र

बिरभूम के स्क्रॉल पट चित्रों में समकालीन विषय आमतौर पर नहीं मिलते। उनमें अभी भी परंपरागत, पौराणिक और ऐतिहासिक विषय ही प्रचलित हैं। उनकी शैली से ऐसा लगता है कि वह यूरोपीय चित्र शैलियों से भी प्रभावित हुए हैं। ऐसा लगता है कि ये चित्रकार औपनिवेशिक शासन के दौरान काष्ठ शिल्प, रंगीन शिलामुद्र, अखबार की कतरनों और अन्य स्रोतों के संपर्क में रह चुके हैं।

पश्चिमी प्रभाव के कारण ये चित्र ज़्यादा स्पष्ट और अभिव्यक्तिपूर्ण दिखाई देते हैं। उनमें गहराई भी ज़्यादा है। इन चित्रों में बूढ़े या युवा चेहरों को अलग-अलग पहचाना जा सकता है। इन चित्रों में खाली स्थानों को भी उस तरह खुला नहीं छोड़ा जाता जैसे मिदनापुर के पट चित्रों में होता है। इन चित्रों में बहुत कम घटनाएं ही बारीकी से दर्शाई जाती हैं। इन चित्रों का आकार बड़ा होता है। उनकी चौड़ाई 3 फुट के आसपास रहती है और कथावाचन के दौरान ये कलाकार एक छोटा सा स्टैंड भी इस्तेमाल करते हैं।

मुर्शिदाबाद के पट चित्र

मुर्शिदाबाद में इस्लामिक संस्कृति काफी व्यापक और गहरी है। यह संस्कृति कुछ बेहतरीन स्क्रॉल पेंटिंग्स का स्रोत रही है। मुर्शिदाबाद के पट चित्रों में सांस्कृतिक अभिव्यक्ति बहुत स्पष्ट दिखाई देती है। देश के विभाजन के समय यहां की पट परंपरा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा और अब भी लोगों के निजी संग्रह में बहुत कम संख्या में ही पट चित्र पाए जाते हैं।

इस धारा के कलाकार ज़्यादा विवरणात्मक और परिष्कृत चित्र बनाते हैं। वह अपने पात्रों को लाल पृष्ठभूमि में अंकित करते हैं मगर उनके शक्तिशाली रंगों के कारण ये पात्र बिल्कुल अलग दिखाई देने लगते हैं। इस शैली के कई कलाकारों ने अत्यंत आकर्षक चित्र भी बनाए हैं। इन चित्रों में कपड़े, आभूषण, वास्तुशिल्प आदि के आश्चर्यजनक विवरण भी चित्रित किए गए हैं। यह पेंटिंग बहुत सारे संकरे कैनवासों पर बनाई जाती है और उनके आकार को देखकर ताड़पत्र पर लिखी पांडुलिपियों की याद ताज़ा हो जाती है।

ये तीनों शैलियां विषय, रंग, चित्र, भाव-भंगिमा और अभिव्यक्ति के लिहाज़ से एक-दूसरे से बिल्कुल अलग हैं।

आजकल इन परंपराओं के सहारे जीवनयापन करने वालों को नीची नज़र से देखा जाता है। उनकी कला को खरीदने वाला कोई नहीं है। ज़िंदा रहने के लिए अब ये कलाकार नए-नए व्यवसाय पकड़ते जा रहे हैं। ऐसे बहुत सारे कलाकार अब बड़े शहरों में जाने लगे हैं। इन कला रूपों में दोबारा रुचि पैदा करने के लिए तत्काल कदम उठाने पड़ेंगे ताकि ये लोग अपनी इन कलाओं को जीवित रख सकें। इससे न केवल हमारी समृद्ध और विविधतापूर्ण संस्कृति सुरक्षित रह पाएगी बल्कि इन परंपराओं के सहारे ग्रामीण और जनजातीय समुदायों को आजीविका के वैकल्पिक स्रोत भी मिलेंगे।

क्योंकि ये चित्र परंपराएं अनुष्ठानिक परंपराएं रही हैं इसलिए उन्हें काफी तड़क-भड़क और उत्साह के साथ और सामुदायिक स्तर पर प्रदर्शित किया जाता है। यह कलाएं लोगों को एक जगह इकट्ठा करने का अच्छा साधन रही हैं जिससे समुदाय में पैदा होने वाले तनावों को दूर करने और लोगों को एक-दूसरे के सुख-दुख में शामिल करने में उन्होंने एक अहम योगदान दिया है। इन चित्रों के साथ नाचने-गाने के ऐसे क्षण पैदा होते हैं जब लगता है मानो खुद पेंटिंग में भी प्राण आ गए हों। काश ऐसे क्षण, ऐसे उत्सव कभी खत्म न हों। वह अनवरत चलते रहें...।

मध्य युग का आरंभ

■ मुक्तिबोध

...पिछले अंक से जारी

सन् 700 से सन् 1200 तक

भारतीय संस्कृति का यह ह्रास-काल था। समाज जड़ीभूत हो रहा था। इस बीच राजपूत राजाओं का अभ्युदय हुआ। किंतु, शेष जगत् से भारत का संबंध टूट रहा था। ह्रास-दशा दर्शन, धर्म, साहित्य सबमें प्रकट हो रही थी। दक्षिण भारत में पूर्वयुगीन उन्मेष कुछ शेष था। कुछ राजपूत राजा बहुत पराक्रमी और विद्वान हुए। किंतु, वे कभी एकताबद्ध नहीं हो सके। विदेशी आक्रांताओं ने एक के बाद एक सबको धराशायी कर दिया। यह इस बात का सूचक है कि यदि समाज प्रगति नहीं करता तो वह जड़ हो जाता है, उसमें गति ही नहीं रहती।

एक अखिल भारतीय राज्य के स्थान पर अनेक छोटे-बड़े प्रादेशिक राज्यों के अभ्युदय होते रहने की प्रवृत्ति भारत में प्राचीन काल से रही आयी। हर्षवर्धन के साम्राज्य के अनंतर यह प्रवृत्ति और भी बलवान हो उठी।

राजपूतों का उदय

इस युग में भारत के राजनैतिक रंगमंच पर राजपूतों का अभ्युदय एक प्रधान घटना है। राजपूतों ने राज्य-सूत्र हाथ में लेकर जो ऐतिहासिक घटनाएं प्रस्तुत कीं उन्हें हमें जानना चाहिए।

कन्नौज के प्रतिहार और राठौर

कन्नौज एक ज़माने में सम्राट हर्षवर्धन के साम्राज्य का एक भाग था। आगे चलकर वहां प्रतिहार राजपूतों ने अपना राज्य स्थापित किया। सन् 1018 में पश्चिम से होने वाले मुस्लिम आक्रमणों ने उसे तहस-नहस कर दिया। इस घटना से फ़ायदा उठाकर गढ़वाल के राजपूतों ने वहां अपना राज्य बना लिया। अब हुआ यह कि पंजाब और अफ़गानिस्तान के शासक मुहम्मद ग़ोरी ने राठौड़ों के अंतिम राजा जयचंद को मार गिराया। राठौड़ों ने कन्नौज छोड़ दिया, वहां से वे राजपूताने चले गये। मौका पाते ही, जोधपुर में उन्होंने अपना राज्य फिर से क़ायम किया।

दिल्ली के चौहान और तोमर

किसी तोमरवंशीय राजा ने सन् 993 में, प्राचीन इंद्रप्रस्थ के समीप, दिल्ली नगर की स्थापना की। दिल्ली में उस वंश का राज्य सन् 1170 तक रहा। उसके अंतिम राजा अनंगपाल को कोई पुत्र नहीं था; इसलिए, उसकी कन्या का पुत्र-अजमेर का चौहान राजा पृथ्वीराज-दिल्ली राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। अब अजमेर और दिल्ली दोनों एक राज्य हो गये। सन् 1192 में मुहम्मद ग़ोरी ने युद्ध में पृथ्वीराज को परास्त करके उसे मार डाला। उस समय अजमेर और दिल्ली के दोनों राज्य मुस्लिम साम्राज्य के भाग हो गये।

सांबर के चौहान

बताया जाता है, चाहमान या चौहान वंश के एक सामंत ने सातवीं सदी में, अजमेर के आसपास अपना राज्य स्थापित किया। कालांतर में, कन्नौज के प्रतिहारों के ये मांडलिक बन गये। ईसा की नवीं सदी में इन्होंने सिंध के अरबों से लोहा लिया। दसवीं सदी में इन्होंने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और अब ये अपने को 'महाराजाधिराज' कहलाने लगे। इनके उत्तराधिकारियों ने राज्य का खूब विस्तार किया। ग़जनी के बादशाह महमूद ग़जनवी से भी इनका सामना हुआ, जिसमें गोविंदराज चौहान नामक एक राजा ने ख्याति प्राप्त की। बारहवीं सदी में ये बहुत महत्वकांक्षी हो उठे। इन्होंने मालवा के परमार राजाओं से, तो कभी उसके भी आगे बढ़कर, गुजरात के चालुक्यों से, छेड़-छाड़ की। दिल्ली के तोमरों से उन्होंने कई बार युद्ध किये। पंजाब के मुस्लिम शासकों से इन्होंने बहुत बार मोर्चा लिया। बारहवीं सदी के प्रथम चरण में, अजयराज चौहान ने अजमेर बसाया। उसके अनन्तर, विग्रहराज नामक एक प्रचंड पराक्रमी वीर ने दिल्ली सर कर ली और पूर्व-उत्तर में सहारनपुर तक के भू-भाग पर अधिकार कर लिया। सन् 1178 में विख्यात राजा पृथ्वीराज राज्यारूढ़ हुआ। उसने चंदेलों के प्रमार (आल्हाखंड का परमर्दी) तथा गुजरात के भीम द्वितीय को युद्ध के लिए ललकारा।

तब तक पृथ्वीराज-जैसा कि पहले बताया जा चुका है-अजमेर और दिल्ली के संयुक्त राज्य का अधिपति हो चुका था। वह जितना पराक्रमी था, उतना ही उदार-हृदय भी था। ज्यों ही उसने सुना कि पंजाब का मुस्लिम शासक मुहम्मद ग़ोरी दिल्ली के राज्य पर चढ़ दौड़ा है, पृथ्वीराज 3 हज़ार हाथी और 3 लाख घुड़सवार लेकर मैदान में कूद पड़ा। मुहम्मद ग़ोरी (थानेश्वर के पास तलावड़ी या तराई के मैदान से) भाग खड़ा हुआ। यह घटना सन् 1191 की है।

अब हुआ यह कि मुहम्मद ग़ोरी को अपनी कमज़ोरी मालूम हो गयी। वह साल-भर तक फ़ौजी तैयारी करता रहा। तैयारी के बाद, उसने पृथ्वीराज को संदेशा भेजा कि वह इस्लाम कुबूल करे और ग़ोरी की अधीनता स्वीकार कर ले। पृथ्वीराज को ताव आ गया। बग़ैर पूरी फ़ौजी तैयारी किये, पृथ्वीराज मैदान में कूद पड़ा। वह वीर और पराक्रमी था। उसने जमकर लड़ाई लड़ी। पृथ्वीराज के असंख्य सैनिक मारे गये। उसे क़ैद कर लिया गया। और, अंत में, मुहम्मद ग़ोरी ने जब उसका घनघोर अपमान करना चाहा, तब पृथ्वीराज ने उसे माकूल जवाब दिया। मुहम्मद गोरी ने, बदले में, क़ैदी पृथ्वीराज को कत्ल कर दिया। उसके बाद मंदिरों का विध्वंस हुआ। लोग भाग

खड़े हुए। शेष राजपूत राजा देखते रह गये। यह घटना सन् 1192 की है। इस घटना का ऐतिहासिक महत्व है, क्योंकि उससे भारत में तुर्क-अफ़गान साम्राज्य का सूत्रपात हुआ।

जेजाकभुक्ति के चंदेल

नन्नुक नामक किसी चंदेल सामन्त ने जेजाकभुक्ति (बुंदेलखंड) में अपना राज्य स्थापित किया। इस वंश में धंग नामक प्रतापी राजा हुआ जिसने सन् 955 से सन् 1000 तक राज्य किया। उसके ज़माने में चन्देलों का राज्य यमुना नदी से दक्षिण में बेतवा तक फैल गया था, पश्चिम में कालिंजर और ग्वालियर से लेकर जबलपुर तक अपने कब्जे में कर लिया। उसने खजुराहो में विश्वनाथ मंदिर का निर्माण किया। अरब इतिहासकार इब्न उल असीर ने उसके पौत्र विद्याधर को 'अपने समय का सबसे शक्तिशाली भारतीय राजा' कहा है। सन् 1022 में महमूद ग़ज़नवी के सामने चंदेलों की कुछ न चली। सन् 1202 में कुतुबुद्दीन ने भी चंदेलों को पराजित किया। चौदहवीं सदी के मध्य तक यह राज्य किसी-न-किसी तरह चलता रहा, उसके बाद उसका लोप हो गया।

मालवे के परमार

मालवे के परमारों में सर्वाधिक प्रसिद्ध राजा हुआ भोज। उसने विद्या-प्रेम की प्राचीन भारतीय परंपरा का निर्वाह किया। उसके विद्या-प्रेम, न्याय तथा विवेक की अनगिनत कहानियां लोगों में प्रचलित हैं। उसके राज्य के अंतर्गत, भोपाल-होशंगाबाद से लेकर धार और मंदसौर तक का इलाका था। भोपाल नगर (भोजपाल नाम से) उसी ने बसाया। उसने अपने राज्य का विस्तार भी किया। राजस्थान, खानदेश, कोंकरण और मध्य-दक्षिण के प्रदेश उसके राज्य के अंतर्गत थे। सन् 1008 में उसने, दूरदर्शितापूर्वक, उत्तर पश्चिम के शाही राजा आनंदपाल को महमूद ग़ज़नवी के विरुद्ध सहायता दी थी। उसने पूर्वी पंजाब पर भी हाथ मारा। मध्यप्रदेश के कलचुरि और गुजरात के चालुक्यों से उसकी बड़ी शत्रुता रही।

यह राज्य सन् 1205 तक किसी-न-किसी तरह चलता रहा। अलाउद्दीन ख़िलजी ने उसे नष्ट कर दिया।

अन्य राज्य

इनके अतिरिक्त मध्यप्रदेश में हैहय अथवा कलचुरि वंश तथा बंगाल में पाल तथा सेन वंश का राज्य रहा आया। दक्षिण भारत के संबंध में हम पहले कह आये हैं।

राजपूतों की जातीय विशेषताएं

जातीय अभिमान राजपूतों की निजी विशेषता है। जाति की मान-मर्यादा की रक्षा उनका सर्वोच्च धर्म था। देशभक्ति का अर्थ उनके लिए जातीय राज्य के प्रति भक्ति और राजवंश के गौरव के प्रति निष्ठा रखना ही था। उसके लिए वे प्राण तक न्यौछावर कर देते। उनकी देशभक्ति को हम 'संकीर्ण गोत्रीय देशभक्ति' कह सकते हैं। यही भाव जातीय अहम्मन्यता का रूप भी धारण कर लेता।

अभिमानी कुलीन-तंत्र

असल में, उनका राज्य कुल के नेताओं का निरंकुश स्वेच्छाचारी शासनतंत्र था। उनके समाजतंत्र और राजतंत्र को हम कुलीन-तंत्र ही कह सकते हैं। प्रत्येक कुल, अपनी उत्पत्ति को किन्हीं भारतीय देवी-देवताओं से या अति-प्राचीन वीरों से संबद्ध करता। कोई कहता, हमारा कुल सूर्य से उत्पन्न हुआ है, कोई कहता, चंद्र से, कोई कहता, हम अग्नि से उत्पन्न हुए हैं। पुराण-निर्माताओं ने उनकी उत्पत्ति के संबंध में अनेक कथाएं गढ़ ली हैं। उनके छत्तीस कुल बताये गये हैं। कुलीन-तंत्र में, न केवल वंशाभिमान और जातीय अभिमान की भावना थी, वरन् वीरत्व की, युद्धक्षेत्र में अपने आपको पूर्णतः समर्पित कर देने की, प्रज्ज्वलन्त भावना भी थी। पराजित शत्रु यदि शरण मांगता तो वे तुरंत ही उसे क्षमा कर देने में आत्मगौरव और श्रेष्ठता का अनुभव करते। वे युद्ध में विश्वासघात न करते, दीन-निर्धन जनता को कष्ट न देते; स्वामिभक्ति का पालन करते। यहां तक कि यदि वे मुस्लिम राजा के अधीन हो जाते, और उसको स्वामी मान लेते तो वे बराबर उसकी सेवा करते जाते थे, भले ही वह उन्हें क्यों न त्याग दे। वे अपने वचन के पक्के होते थे। पुरुषों के समान ही राजपूतों की स्त्रियां भी ढ़ृढ़ चरित्र, मान-मर्यादा के लिए प्राण देने वाली, तथा सतीत्व, सत्य-निष्ठा और देशभक्ति के उच्च आदर्शों से प्रेरित थीं। अपने सतीत्व और सम्मान के हेतु वे चिता में कूद पड़ती थीं। इसे जौहर प्रथा कहते हैं।

परस्पर-संघर्ष

ये कुल ज़रा-ज़रा सी बात पर लड़ पड़ते। शत्रुता रखने की विधि भी रूढ़िबद्ध हो गयी थी। प्रतिशोध लेना एक ऊंचा काम समझा जाता। राजपूत अपनी आन-बान-शान को बनाने और बढ़ाने के लिए, पास-पड़ोस के राज्यों की राजकुमारियों का अपहरण कर लड़ाई मोल लेते। अपहृत राजकुमारियों से वे अपना विवाह करते, और फिर युद्ध में उल्लासपूर्वक कट मरते। युद्धोत्साह के वे ज्वलन्त प्रतीक थे। जिस राजा के शरीर पर विभिन्न युद्धों के जितने अधिक घाव लगते, वह राजा उतना ही श्रेष्ठ ओर श्रद्धास्पद हो उठता। दूसरे राज्य की, वह फिर अन्य राज्य ही क्यों न सही, मान-मर्यादा हरण कर, अपनी शान बढ़ाना अच्छा समझा जाता।

संकीर्ण दृष्टि

उनमें राजनैतिक सूझ-बूझ का सर्वथा अभाव था, वे दूरदर्शी नहीं थे, एकताबद्ध नहीं हो पाते थे। यदि कभी कोई राजपूत राजा किसी अन्य राजपूत राजा की सहायता के लिए दौड़ भी पड़ता था, तो इसका कारण केवल बंधु-भाव था; राजनैतिक स्वरूप से प्रेरित होकर किया गया कार्य वह नहीं था। विदेशी आक्रांता एक के बाद एक राजपूत राज्य अधिकृत करता जाता था। बलशाली राजपूत वंश उसे दूर से ही देखते रहते थे। उनके पास राजनैतिक दृष्टि नहीं थी।

धर्म-भाव

वे भयानक धर्माभिमानी थे। किंतु सोमनाथ के मंदिर को लुटते देख सकते थे, संघबद्ध होकर, वे विदेशी अत्याचारियों का हाथ नहीं थाम सकते थे। धर्मपरायण वे अवश्य थे किंतु धर्म को उन्होंने संकुचित अर्थ में ग्रहण किया- उनका धर्म कुलगत मान-मर्यादा, जातीय रीति-नियम और रूढ़ि, तथा अनेकों संप्रदायों में विश्वास तक ही सीमित रहा।

राज्य-व्यवस्था

राजपूत नरेश निरंकुश स्वेच्छाचारी राजा थे। एक राजा के अंतर्गत कई मांडलिक और सामंत रहते। इन सामंतों के भी अपने

छोटे उप-राज्य या कहिए-जागीर होती। जागीरदार प्रजा से कर (विशेषकर भूमिकर) वसूल करता, और उसके आधार पर वह अपनी शक्ति बनाता। ये जागीरदार या सामंत ही राजा की असली शक्ति होते। इन सामंतों के पास अपनी-अपनी सेनाएं भी होतीं। यद्यपि वे राजा को अपनी आय का एक विशेष भाग देते, फिर भी इनकी अपनी आर्थिक और सैनिक सत्ता रहती। राजा को कभी-कभी इनके सामने झुक जाना पड़ता। स्वामी-भक्ति का आदर्श, जातीय गौरव-भावना आदि के फलस्वरूप, राजा और उसके सामंतों में भावनात्मक ऐक्य रहता।

युद्ध-व्यवसायी

वस्तुतः राजपूत युद्ध-व्यवसायी थे। शासन-व्यवस्था का विशाल और सर्वांगीण प्रबंध और शासन के लोकोपयोगी भिन्न-भिन्न विभाग, जो हमें मौर्य अथवा गुप्त राजकीय व्यवस्था में दिखायी देते हैं, राजपूत शासन में नहीं पाये जाते।

राज्य-व्यवस्था तथा समाज-तंत्र के विकास की दृष्टि से, राजपूत लोग उन्नति के प्राचीन स्तर से भी बहुत-बहुत नीचे आ गये थे। उनके पास देश, समाज या मानवता की उन्नति का कोई विशाल या व्यापक स्वप्न नहीं था।

राजपूत कौन थे?

'राजपूत' शब्द 'राजपुत्र' का विकृत रूप है। संभवतः, ये शक, हूण, कुषाण, गुर्जर, आभीर आदि जातियों की संतान थे। यह सही है कि उन्हें आर्यधर्म में दीक्षित किया जा चुका था; किंतु लड़ते-भिड़ते रहने की आदत, गोत्र-अभिमान, शुद्ध रक्त का अभिमान, धर्मसंबंधी संकीर्ण भाव-दृष्टि, प्रतिशोध-प्रवृत्ति, यह सूचित करती है कि उनकी पूर्वकालीन क़बीले वाली मनोवृत्ति अभी शेष थी। उन्हें सबसे बड़ी चिंता अपने जाति (क़बीले) की गौरव-रक्षा के संबंध में रहती ही थी। केवल अपने गोत्र या कुल की भक्ति ही सर्वोपरि थी।

राजपूतों की अन्य विशेषताएं

उनमें बाल-विवाह प्रचलित था। विधवा-विवाह नहीं होता था। अधिक कन्याएं उत्पन्न होने पर उनका वध कर दिया जाता। सती-प्रथा खूब प्रचलित थी। पति के हार जाने पर स्त्रियां जौहर करतीं। (जौहर प्रथा का स्पष्टीकरण किया जा चुका है)। वे अफ़ीम बहुत खाते। वे स्वाभिमानी, भोले-भाले, सीधे-सादे, दिल के सच्चे, बात के पक्के, कट-मरने के लिए तैयार, ईमानदार और वफ़ादार लोग थे। इसमें क्या आश्चर्य कि उनके इन गुणों को पहचानकर, मुग़ल सम्राट अकबर उनकी सेवाएं प्राप्त करे और उनके साहचर्य का उचित राजनैतिक उपयोग करे!!

भारत-पराजय के लिए कौन ज़िम्मेदार?

साधारणतः, अब तक भारत-पराजय का दोष राजपूत राजाओं पर मढ़ा जाता रहा। वे उत्तर तथा पश्चिम भारत के स्वामी थे। अगर उनमें राजनैतिक एकता, सूझ-बूझ और विवेक होता, तो निःसन्देह वे विदेशी आक्रान्ताओं को हटा सकते थे। किंतु वे जड़ीभूत और स्थिर हो गये थे-वे सिर्फ़ आपस में ही मार-काट मचा सकते थे। यहां तक कि उनकी युद्ध-कला भी पुरानी पड़ चुकी थी। उनमें ताज़गी, स्फूर्ति और नयी-नयी बातें सीखने और ज्ञान-संवर्द्धन करने की शक्ति नहीं रही थी।

भारत ने शेष जगत् से अपना संबंध ही तोड़ लिया था। मुस्लिम आधिपत्य के पूर्व, भारतीय राजपूत राज्य बलूचिस्तान, अफगानिस्तान, बल्ख, तक फैले हुए थे। अफ़गानिस्तान में ग़ज़नी पर ब्राह्मण राजवंश राज्य करता था। यदि हमारे समाज और देश में जागृति होती तो उन मध्य-एशियायी प्रदेशों से गहरा संपर्क रखा जा सकता था और ज्ञान-वर्द्धन द्वारा स्वयं का विकास किया जा सकता था। साथ ही, वहां की उलट-पुलट पर भी निगाह रखकर बचाव किया जा सकता था।

ह्रास-काल

किंतु, उन दिनों सारा भारतीय समाज ही जड़ीभूत हो गया था। नालंदा-विक्रमशिला जैसे विश्व-विद्यालयों में तंत्र-मंत्र प्रधान विषय हो गये थे। पूर्वी भारत में बौद्ध धर्म विकृत होकर, वज्रयान का रूप धारण कर चुका था। निषिद्ध समझे जाने वाले व्यवहारों को मुक्ति का मार्ग समझा गया था। तंत्र-मंत्र अब वामाचार बन गया। यह वामाचार शाक्तों और शैवों में घुस गया। अघोरपंथी तथा कापालिक, कालमुख और तरह-तरह के तांत्रिक, त्रिपुर सुंदरी के उपासक और तारा के भक्त, चमत्कारों और सिद्धियों के बखान से राजा और किसान दोनों को प्रभावित करने लगे। अनेकानेक साधु और योगी, सिद्ध और नाथ देशभर का चक्कर लगाते थे। वे कहां नही थे? गौड़ और बंगाल, नेपाल और आसाम से लेकर वे गुजरात के सोमनाथ मंदिर में भी अपनी धूनी रमाये थे। वे पश्चिमी पंजाब में नमक की पहाड़ी से लेकर तो अफ़गानिस्तान तक में भ्रमण करते थे। घर में लोग शुद्ध शैव मत या भागवत मत का अनुगमन करते, किंतु, साथ ही, वे अघोरियों और तांत्रिकों पर भी श्रद्धा रखते!! धर्म का सच्चा स्वरूप गौण हो गया; अंधविश्वास ने प्रधान स्थान ग्रहण करके, आंख मूंदकर, गांजा और चरस की दम मारी।

जड़ीभूत अभिरुचि

भारतीय लोक भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगा। किंतु मुख्य विषय केवल तीन ही थेः (1) वैराग्य या नीति; (2) श्रृंगार; (3) युद्ध। राजाओं की स्तुति और उनकी प्रशंसा में अत्युक्तिपूर्ण वर्णनों से युक्त उनके सच्चे और झूठे पराक्रमों के गीत गाये जाने लगे। आख्यान-काव्य भी लिखे गये, जिनमें राजाओं के युद्धों और उनके विवाहों का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया जाता। इन्हें 'रासो' ग्रंथ कहा गया। इनमें सर्वाधिक श्रेष्ठ और सुंदर **पृथ्वीराज रासो** है, जिसमें अजमेर और दिल्ली के राजा पृथ्वीराज की जीवन-गाथा है। इस ग्रंथ में कई स्थानों पर सुंदर वर्णन हुए हैं। संस्कृत में भी अनेक ग्रंथों की रचना हुई, इनमें विलासितापूर्ण श्रृंगार भावना ही परिलक्षित हुई। मूर्तिकला में भी उत्कट श्रृंगार प्रकट हुआ। नारी केवल उपभोग्या हो उठी।

ज्वलंत दीपक

मध्य युग के प्रारंभिक चरणों में हमें कुछ-न-कुछ अंशों में प्राचीन भारत की गौरवशाली परंपराएं देखने को मिलती हैं। किंतु, ज्यों-ज्यों हम सन् 1000 के आगे बढ़ते जाते हैं, साहित्यिक अभिरुचि अधिकाधिक चमत्कारवादी, अधिकाधिक जड़ीभूत दृष्टिगोचर होती जाती है। जिन प्रारंभिक मध्ययुगीन राजाओं के यहां प्राचीन गौरवपूर्ण परंपराएं (चाहे वे थोड़ी-बहुत विकारग्रस्त क्यों न हो गयी

हों) हमें प्राप्त होती हैं, उनमें राजा मुंज, राजा भोज, लक्ष्मणसेन और बछालसेन प्रमुख हैं। उन्होंने धर्म, दर्शन, विज्ञान, गणित आदि के विद्वानों को प्रश्रय दिया। काव्य, नाटक, काव्य मीमांसा, छंद, व्याकरण, गणित, प्रहसन आदि भिन्न-भिन्न विषयों के मूल्यवान ग्रंथ सामने आए। मध्य युग के प्रारंभिक चरणों में शिक्षित व्यक्तियों की भाषा अधिकतर संस्कृत ही थी। अतएव, ग्रंथ-रचना मुख्यतः संस्कृत में ही होती थी। कभी-कभी कुछ जैन ग्रंथ प्राकृत अथवा अपभ्रंश में लिखे जाते। ज्यों-ज्यों हम सन् 1000 को पार कर, सन् 1200 के निकट पहुंचते हैं त्यों-त्यों प्रादेशिक भाषाओं में साहित्यिक विकास के चिन्ह हमें दिखायी देने लगते हैं। साहित्यिक अभिरुचि तो बिगड़ गयी थी। अब उसमें हमें शब्द-क्रीड़ा उत्कट श्रृंगार और रूढ़िबद्धता दिखाई देने लगती हैं।

विशाखादत्त नामक एक लेख ने 'मुद्रा राक्षस' नामक एक नाटक लि खा, उसमें हमें जिस समाज के दर्शन होते हैं, उससे प्रसन्नता नहीं हो पाती। चंदेल राजा हर्ष के राजकवि भीम (9वीं सदी), कल्चुरि के यहां मुरारि (9वीं सदी), कन्नौज के राजकवि राजशेखर और क्षेमेश्वर (10वीं सदी) की रचनाओं में कथानक पौराणिक हैं। वे राजकीय जीवन के चित्र हैं या प्रहसन हैं। उनमें कोई स्वाभाविक भावोन्मेष नहीं है। सोमदेव कृत '**ललित विग्रहराज नाटक**' बीसलदेव नामक ऐतिहासिक पुरुष के जीवन के एक प्रसंग को लेकर लिखा गया है। उसमें भी वहीं रूढ़िवादिता तथा चमत्कारपूर्ण व्यंजनाएं और अत्युक्तियां हैं।

12वीं सदी में कन्नौज के कवि श्रीहर्ष ने **नैषध-चरित** लिखा। इसके सौ साल पहले काश्मीर के कवि क्षेमेन्द्र ने भी अनेक सुंदर रचनाएं कीं, जिसमें **भारतमंजरी, रामायणमंजरी** आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। जैनों ने और बौद्धों ने भी काव्य रचना की। आठवीं सदी में **पार्श्वाभ्युदय** के रचयिता जिनसेन थे। काव्य शास्त्र की भी विशेष उन्नति हुई। विज्ञान, आयुर्वेद, छंदशास्त्र, गणित, ज्योतिष, संगीतशास्त्र, शिल्प-शास्त्र, धर्मशास्त्र-यहां तक कि इतिहास (कश्मीर के कवि कल्हण ने **राजतरंगिणी लिखी**) का भी साहित्य सामने आया।

लोककथाओं की तो इन दिनों बाढ़ आ गयी। इन्हें साहित्यिक रूप दिया गया। 11वीं सदी में काश्मीर के कवि क्षेमेन्द्र ने **वृहतकथामंजरी** लिखी, सोमदेव ने **कथासरितसागर** की रचना की। उसी प्रकार, **बेताल पंच विशिंतकर (बेताल पच्चीसी)** और **सिंहासनद्वांत्रिंशिका (सिंहासन बत्तीसी)** भी प्रसिद्ध ग्रंथ है।

राजपूत शासन योग्य निर्माता थे। उन्होंने मंदिर, घाट, तालाब, किले, बुर्ज, राजप्रासाद खूब ही बनवाये। मध्यप्रदेश का खजुराहो मंदिर उन्हीं के कला-प्रेम का स्मारक है। राजपूत कला में मूर्तिकला भी खूब विकसित हुई। किंतु, उसमें स्वाभाविक भावोन्मेष नहीं। केवल अतिरंजना द्वारा लालित्य बढ़ाने की चेष्टा है।

दक्षिण भारत

शंकराचार्य : हर्षवर्धन के अंत के बाद में, प्राचीन युग एकदम लुप्त नहीं हुआ। दक्षिण भारत में वह कुछ अधिक समय तक रहा। केरल में, नम्बूद्रि ब्राह्मण जाति में शंकराचार्य, जैसे महापंडित हुए, जिन्होंने बौद्ध दर्शन का खंडन किया और वेदांत मत का पुनरुज्जीवन किया। उन्होंने अपने उपदेशों के प्रचार के लिए पश्चिम में द्वारका, पूर्व में जगन्नाथपुरी, उत्तर में बद्रीनाथ और दक्षिण में श्रृंगेरी नामक स्थानों में अपने मठ स्थापित किये। इन मठों में वेदान्त का अध्यापन होता। मठ के साधु संगठित रूप से वेदान्त का प्रचार करते। उन्होंने सृष्टि, आत्मा, परमात्मा संबंधी प्रश्नों पर विचार करते हुए एक वेद-परंपरानुकूल सुसंगठित दर्शन प्रस्तुत किया। शंकराचार्य का दर्शन विश्व की श्रेष्ठतम उपलब्धियों में से है। शंकराचार्य, 'जगद्गुरु', कहलाते। वैसी ही उनमें विलक्षण प्रतिभा थी। शंकराचार्य के दर्शन का महत्व इसमें है कि उन्होंने नीरस कर्मकांड को निरर्थक ठहराया। किंतु वे जातिवाद के कट्टर समर्थक थे। उन्होंने जगत् को मिथ्या और माया बताया।

रामानुजाचार्य : दक्षिण में बारहवीं सदी में रामानुजाचार्य हुए, उन्होंने विशिष्टाद्वैत मत की स्थापना की। उन्होंने इस जगत् को माया मानने से इंकार कर दिया। मोक्ष का मार्ग ईश्वर की सच्ची भक्ति है। उन्होंने अस्पृश्य जाति तक के लिए भक्ति का मार्ग खोल दिया। शंकराचार्य ने अपने विचारों तथा प्रयत्नों द्वारा वर्ण-व्यवस्था तथा जाति-व्यवस्था को दृढ़ किया था। रामानुजाचार्य ने ज़्यादा उदारता बरती। ईश्वर तो केवल अपने भक्त की भावना देखता है, वह उसकी जाति या वर्ण नहीं देखता-रामानुजाचार्य के इस मत का आगे चलकर बड़ा क्रांतिकारी परिणाम हुआ। रामानुजाचार्य वैष्णव थे। उनके प्रभाव से वैष्णव मत का काफी प्रचार हुआ।

शैव धर्म : यद्यपि शैव धर्म बिगड़कर कापालिक और कालमुख जैसे संप्रदायों में बंट गया था, फिर भी काश्मीर में उसका प्रांजल रूप सुरक्षित था। नवीं और दसवीं सदी के बीच, काश्मीर में शैव धर्म ने अद्वैतवाद को आत्मसात कर लिया। उसमें उच्च दार्शनिक भाव थे। उसी प्रकार, शैव धर्म को दक्षिण के चोल और पाण्ड्य राजाओं ने आश्रय दिया।

लिंगायत : दक्षिण में एक शैव संप्रदाय था, जिसका नाम था लिंगायत या वीरशैव। ये ब्राह्मण-विरोधी, वैदिक-परंपरा विरोधी, तप-विरोधी, तीर्थ यात्रा-विरोधी तो थे ही, वे साथ ही बाल-विवाह का विरोध करते, विधवा-विवाह का समर्थन करते, मुर्दों को गाड़ते और शिवलिंग की पूजा करते थे। वैदिक परंपरा के विरोध की भी परंपरा इस प्रकार चल रही थी।

...क्रमशः जारी

साभार : मुक्तिबोध रचनावली, भाग 6

***isd* इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी**

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस,

62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067

टेलीफोन 011-26177904, 46025219 टेलीफैक्स 011-26177904,

ईमेल : notowar.isd@gmail.com / वेबसाइट : isd.net.in

केवल सीमित वितरण के लिए